ISSN 2229-6328

भाग - एकोनचत्वारिंशत्, खण्ड - प्रथम

ॐ पावमानी

त्रैमासिकी मूल्याङ्किता वैदिक शोधपत्रिका



अथर्ववेद में विविध विद्याएँ

ISSN 2229-6328

ओ३म्

प्रेरणास्रोत : प. पू. स्व. स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज

पावमानी

त्रैमासिकी मूल्याङ्किता (Peer Reviewed) वैदिक शोधपत्रिका

भाग: एकोनचत्वारिंशत्, प्रथम खण्ड (वि. सं. २०८०)

अथर्ववेद में विविध विद्याएँ

प्रकाशक

स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान

गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला, मेरठ- २५०५०१

जन० - मार्च २०२४ **मूल्य १००.००**

एक प्रति का मूल्य	...	१०० रु०
वार्षिक सदस्यता शुल्क	...	४०० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क	...	२००० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क (छात्रों हेतु)	...	१५०० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क (संस्था हेतु)	...	५००० रु०
सहयोगी सदस्यता शुल्क	...	५५०० रु०
संरक्षक सदस्यता शुल्क	...	१०००० रु०
परामर्शक सदस्यता शुल्क	...	११००० रु०

आभार

पावमानी के इस अङ्क का सम्पूर्ण व्ययभार आश्रम के प्रति एकनिष्ठ स्व. माता प्रकाशवती जी की प्रेरणा से रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ, उ.प्र. ने वहन किया।

• स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक
स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला,
मेरठ - २५०५०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८००६७०२५५१

अणुवाक्:
pavamani86@gmail.com

• **पावमानी**- ISSN२२२९-६३२८
भाग: एकोनचत्वारिंशत्, प्रथम खण्ड
जनवरी - मार्च २०२४

• प्राप्ति स्थान-
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, मेरठ

• मुद्रक
रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ (उ.प्र.)

• प्रेरणास्रोत :
प.पू. स्व. श्री स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

• प्रधान सम्पादक
स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

• सम्पादक
प्रो. सोमदेव शतांशु
०९८३७६४७४२७

प्रो. वाचस्पति मिश्र
०९३१९००२४०२

• **कल्पादितः** १,९७,२९,४९१२४ गते
• **सृष्टि आदितः** १,९६,०८,५३१२४ गते
• **युगाब्द** ५१२५
• **दयानन्दाब्द** १९९

सम्पादकीयम्

भगवती श्रुति भारतीय संस्कृति की आधारभूता है। सृष्टि के आदिकाल से वेद की ज्योति ने ही आर्य सभ्यता की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। मानवीय कर्तव्य, विश्व शान्ति, विश्व कल्याण, विश्व बन्धुत्व एवं सार्वभौम धर्म के आदि उद्घोषक वेद ही हैं। सृष्टि के आदि से ही वेद ही जगत् का एकमात्र सार्वभौम धर्मशास्त्र है। भारत में वेद से इतर अन्य अनेक धर्मशास्त्र हैं, किन्तु अन्य समस्त धर्मशास्त्रों का आधार वेद ही है-

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।

यद्यपि संहिताओं में चारों ही संहिताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु लोकव्यवहार की दृष्टि से अथर्ववेद का विशिष्ट स्थान है। अथर्ववेद का प्राचीन नाम अथर्वाङ्गिरस है। ब्रह्मवेद एवं अङ्गिरावेद भी अथर्ववेद का अन्य नाम हैं। अथर्वन् एवं अङ्गिरा दो ऋषि थे तथा दोनों ऋषि अथर्व मन्त्रों के साक्षात्कर्ता थे। प्राचीनकाल में अथर्ववेद की नौ शाखाएँ थीं- **नवधा आथर्वणो वेदः।** किन्तु वर्तमानकाल में शौनक एवं पैप्पलाद शाखाएँ ही उपलब्ध होती हैं।

यद्यपि अथर्ववेद विविध ज्ञान विज्ञान का भण्डार है। ज्ञान विज्ञान के विविध पक्ष इसमें वर्णित हैं। पुनरपि इसमें आयुर्विज्ञान का विस्तार से विवेचन प्राप्त होता है। अथर्ववेद को सर्वविध चिकित्सा का उत्स कहना

अतिशयोक्ति नहीं होगा। यही कारण है कि अथर्ववेद को भैषज्यवेद भी कहा जाता है-

येऽथर्वाणस्तद् भेषजं यद्भेषजं तदमृतं यदमृतं तद् ब्रह्म।

अथर्ववेद में मुख्यतः ०४ प्रकार की चिकित्सा का वर्णन प्राप्त होता है- आथर्वणी चिकित्सा, आङ्गिरसी चिकित्सा, दैवी चिकित्सा एवं मनुष्यजा चिकित्सा।

आथर्वणी चिकित्सा के अन्तर्गत ध्यान, जप एवं प्राणायाम के द्वारा मन को नियन्त्रित करके प्राण शक्ति का संवर्धन कर रोगों का प्रशमन किया जाता है। आयुर्वेद के अनुसार षड् रसों की वृद्धि अथवा न्यूनता से शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। जिस विधि के द्वारा शरीर में रसों की स्थिति को समुचित किया जाता है, उसे आङ्गिरसी चिकित्सा कहते हैं। पञ्च महाभूत, सूर्य, चन्द्र एवं यज्ञ आदि के माध्यम से की जाने वाली चिकित्सा दैवी चिकित्सा कहलाती है। मनुष्य के द्वारा निर्मित औषधियों के द्वारा की जाने वाली चिकित्सा मनुष्यजा चिकित्सा कहलाती है। इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में विविध औषधियों के उत्पत्ति स्थान एवं गुणधर्म का विस्तार से वर्णन है, जिसका विस्ताररूप चरक संहितादि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

भारतीय संस्कृति में परिवार एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। गृहस्थ आश्रम को समस्त आश्रमों का मूल माना गया है-

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥

परिवार के सन्दर्भ में आथर्वण ऋषि कहता है कि जिस परिवार में पवित्र अन्तःकरण तथा शुद्ध आत्मा वाले मनुष्य शुभ कर्मों की इच्छा करते हुए रोगरहित होकर आनन्द के साथ रहते हैं, ऐसे उत्तम परिवार में

ये मनुष्य स्वस्थ अङ्गों वाले अपने माता-पिता एवं पुत्रों को देखें।

इस समय पारिवारिक विघटन की समस्या भारतीय समाज में एक विकराल रूप धारण करती जा रही है। अथर्ववेद का साम्मनस्य सूक्त (३.३०) पारिवारिक प्रीति का उपदेश देता है। सौमनस्यता, सहृदयता, अद्वेषता एवं परस्पर प्रीति परिवार के आधारभूत तत्त्व हैं। अथर्ववेद का ऋषि कहता है कि पुत्र पिता का अनुगामी हो, माता के साथ समान मन वाला हो तथा पत्नी पति से प्रेमपूर्ण व्यवहार करने वाली हो। जिस प्रकार गोमाता अपने नवजात बछड़े से स्नेह करती है, उसी प्रकार परिवार के सदस्य एक दूसरे से प्रीति करने वाले हों-

सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

अथर्ववेदीय इस उपदेश के आचरण से वर्तमानकालीन पारिवारिक विघटन की समस्या को नियन्त्रित किया जा सकता है।

भारत की राष्ट्रियता को खण्डित करने के लिए विदेशी शक्तियाँ एवं वामपन्थी लोग अहर्निश षड्यन्त्र करते रहे हैं। इसका प्रतीकार वैदिक राष्ट्रवाद के माध्यम से ही सम्भव है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत है। अथर्ववेद के भूमि सूक्त (१२.१) में राष्ट्रिय चेतना का चरमोत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। अथर्ववेद का ऋषि कहता है कि जिस प्रकार जन्मदात्री माता हमारा लालन-पालन करती है, उसी प्रकार यह भूमि अन्न, जल, वस्त्र आदि प्रदान कर हमारा भरण पोषण करती है, अतः यह भूमि भी हमारी माता के समान है- **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।** जिस प्रकार अपनी माता की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, उसी प्रकार अपना सर्वस्व समर्पित कर इस भूमि माता की रक्षा करना भी हमारा परम कर्तव्य है- **वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।** अथर्ववेद में सत्य,

ऋत, दीक्षा, तप एवं ब्रह्मयज्ञ राष्ट्र के धारक तत्त्व बताए गए हैं। जिस राष्ट्र के निवासी इन गुणों को जीवन में धारण करते हैं, वह राष्ट्र निरन्तर उन्नति को प्राप्त करता है।

यद्यपि अथर्ववेद विविध ज्ञान विज्ञान का मूलस्रोत है। पुनरपि अथर्ववेद के यथार्थ स्वरूप को न जानने वाले कुछ विद्वानों ने अथर्ववेद को जादू-टोने का वेद बताया। अथर्ववेद विषयक इन भ्रान्तियों की निवृत्ति के लिए पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार जी के द्वारा लिखित आथर्वण भाष्य को अवश्य पढ़ना चाहिए। यद्यपि पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार जी का अथर्ववेद भाष्य अथर्ववेद के प्रारम्भिक १२ सूक्तों पर प्राप्त होता है। पुनरपि उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा, पाण्डित्य एवं ऊहा से अथर्ववेद पर जो भाष्य लिखा है, वह सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के लिए एक कुञ्जी के समान है।

यह कुञ्जी सन्मार्ग के द्वार खोलकर परमानन्द की प्राप्ति में सहायक बने, एतदर्थ पावमानी का प्रस्तुत अङ्क आपकी सेवा में प्रस्तुत है-

प्रो० सोमदेव शतांशु

अनुक्रमणिका

पाञ्चजन्य का यथार्थ

पूज्य स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती[1]

केन्द्रीय आर्य समिति, मेरठ के तत्त्वावधान में आर्यसमाज थापर नगर के वेद-प्रचार सप्ताह समारोह में गुरुकुल प्रभात आश्रम के कुलाधिपति पूज्य स्वामी विवेकानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा दिए गए उद्बोधन को लेखरूप में सम्पादित कर आप सभी सुधी पाठकों के प्रेरणार्थ प्रस्तुत है-

आप सभी मेरे साथ तीन बार प्रणव ध्वनि का सस्वर श्रद्धा और निष्ठा के साथ उच्चारण करेंगे। प्रणवध्वनि...

ओ३म् एते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया।
तेभिर्नः सोममृळय॥[2]

ओ३म् त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः॥[3]

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

---

[1] **कुलाधिपति, गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोलाझाल, मेरठ**

[2] ऋग्वेद ९.६१.५

[3] ऋग्वेद १.९१.६

श्रद्धामयी पवित्र मातृशक्ति, वेदानुरागी सज्जनों, विद्वत् मण्डल! ये आपका वेदप्रचार का कार्यक्रम चल रहा है और बड़ी गम्भीरता से आप इस प्रकार की बातों को सुनते रहते हैं। जिस प्रकार शारीरिक पुष्टि के लिए प्रतिदिन भोजन किया जाता है, उसी प्रकार बुद्धि की पुष्टि के लिए ज्ञान आवश्यक है। जैसा कि मनुस्मृति में कहा है-

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ मनु० ५.१०९

मैं आप सभी श्रोताओं से एक प्रश्न पूछता हूँ- पाञ्चजन्य किसको कहते हैं? एक श्रोता ने उत्तर दिया- पाञ्चजन्य श्रीकृष्ण जी का शङ्ख था। सही बताया आपने, क्योंकि गीता में आया है-

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥[४]

किन्तु जब आप बृहत् यज्ञ करते हैं, तो उसमें प्रयुक्त वेदों के मन्त्रों में भी पाञ्चजन्य शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। यथा-

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्॥
ऋग्० ९.६६.२०

इस प्रकार चारों वेदों में पाञ्चजन्य शब्द का आठ बार उल्लेख है। इस पाञ्चजन्य शब्द का ऋषि दयानन्द ने क्या अर्थ किया है? ऋषि दयानन्द कहते हैं कि- वह अग्नि ऋषि कैसा है? वह (**पवमानः**) पवित्र करने वाला है और (**पाञ्चजन्यः**) अर्थात् पाँच प्राणों (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) की साधना द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाला है तथा (**पुरोहितः**) पहले से ही सभी का हित चिन्तन करने वाला है, (**तम् ईमहे**)

---

[४] गीता १.१०

उसको हम पुकार रहे हैं। इस प्रकार ऋषि दयानन्द ने पाञ्चजन्य शब्द का अर्थ पाँच प्राण-अपान आदि किया है। वर्णव्यवस्था की दृष्टि से पाञ्चजन्य शब्द से पाँचों वर्णों का ग्रहण किया जा सकता है। अब आप सोच रहे होंगे कि वर्ण तो चार ही होते हैं, तो ये पाँचवाँ वर्ण कौन-सा है? मैं आपको बताता हूँ- आज-कल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि कहने पर विवाद हो जाता है। अतः मैं ब्राह्मण को ज्ञानी, क्षत्रिय को शूरवीर, वैश्य को व्यापारी वर्ग तथा शूद्र को सेवकवर्ग कहूँगा। इन चारों के बाद पाँचवाँ और है, जो न ज्ञानी बन सका, न शूरवीर, न व्यवसायी बन सका और न ही वह सेवा में कुशल है, वह पाँचवाँ वर्ण निषाद है। सेवा सबसे कठिन कार्य है। भर्तृहरि कहते हैं-

मौनान् मूकः प्रवचनपटुश्चाटुलो जल्पको वा
धृष्टः पार्श्वे वसति च सदा दूरतश्चाप्रगल्भः।
क्षान्त्याभीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः॥[५]

अर्थात् सेवक मौन रहने से गूँगा, बोलने में निपुण होने से वाचाल अथवा निरर्थक बक-बक करनेवाला, समीप में होने पर ढीठ, दूर रहने से असावधान, सहनशील होने से डरपोक और दुर्व्यवहार को न सहने अकुलीन कहलाता है। इस प्रकार सेवाधर्म योगियों के लिए भी अत्यन्त कठिन और दुर्गम होता है।

महाभारत में जयद्रथवध के समय सेवा से सम्बन्धित एक प्रसङ्ग आता है- जयद्रथ को ढूँढते समय अर्जुन के अश्व जब बहुत थक गए थे, तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ऐसा वातावरण बनाओ, जिससे मैं

---

[५] नीतिशतक ४८

अश्वों की थकान दूर कर सकूँ। तब अर्जुन ने सभी योद्धाओं को रोका और श्रीकृष्ण ने अश्वों को स्नान कराया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मनुष्य ही नहीं, अपितु अश्वों की भी सेवा की और अपने सेवाधर्म को निभाया।

अब जब ऋषि दयानन्द कहते हैं कि पाञ्चजन्य अर्थात् प्राण-अपान इत्यादि की साधना कर सिद्धि प्राप्त करने वाले योगी उपरोक्त पाँच जनों की सेवा करने वाले लोग हैं। जो यह पाँचवाँ निषाद हतास तथा निरास होकर बैठा है, उसका क्या उपाय है? उसका उपाय यह है कि जो सेवकवर्ग है, वह निषाद को सँभाले और बताए कि कैसे कार्य किया जाता है। अब वेद में आए हुए पाञ्चजन्य शब्द का अर्थ होता है- जो पाँच प्रकार के जनों का हित चाहने वाला है, वह पाञ्चजन्य है। प्रायः सभी भाष्यकारों ने एक जैसा ही अर्थ किया है कि ये पाँच प्रकार के क्लेशों पर विजय प्राप्त करने वाला तथा पाँच यमों व पाँच नियमों का पालन करनेवाला पाञ्चजन्य है। अतः पाञ्चजन्य से केवल शङ्ख मत जानो, अपितु जो सबका हित चाहने वाला है, वह व्यक्ति भी पाञ्चजन्य है।

आपके द्वारा आयोजित यह कार्यक्रम एक प्रकोष्ठ में ही चल रहा है, मैं तो कहता हूँ ऐसे कार्यक्रम बाहर मनाया करो, दीपावली बाहर मनाया करो। आजकल बाहर मनाना शुरु भी हुआ है- कुछ समय पहले मैंने सन्देश सुना कि दीपावली के दिन कई लाख दीपक जलाए गए। मैं कहता हूँ कि योगी जी से कहो कि अयोध्या व काशी में तो लाखों दीपक जल गए, अबकि बार प्रत्येक घर में कम से कम पाँच दीपक तो जलें ही।

इस प्रकार करोड़ों दीपक जलेंगे और पर्व को और अच्छी प्रकार मनाया जा सकेगा। दीपावली आ रही है, तो पटाखे जलाने की चर्चा भी प्रारम्भ हो गयी है, मैं कहता हूँ कि आज हमारे विज्ञान की इतनी प्रगति नहीं हुई है कि सुगन्धित द्रव्य को मिला के पटाखा छूटे। जबकि

महाभारत में सम्मोहनास्त्र की चर्चा आयी है, जिस पर आपका ध्यान नहीं गया होगा। जब विराट् नगरी में युद्ध होने की स्थिति आ गई, तो अर्जुन बृहन्नला के वेश में युद्ध में सारथी बनकर गए, तो द्रोणाचार्य ने गाण्डीव की टङ्कार से बृहन्नला रूपधारी अर्जुन को पहचान लिया और भीष्म पितामह से कहा-

नदीज! लङ्केशवनारिकेतुर्न गाह्वयो नाम नगारिसूनुः।
एषोऽङ्गनावेषधरः किरीटी जित्वावयं नेष्यति चाद्य गावः॥[६]

अर्थात्- 'हे गङ्गानन्दन! जिनकी ध्वजा पर हनुमान् जी विराजमान होते हैं, एक वृक्ष का नाम (अर्जुन) ही जिनका नाम है और जो इन्द्र के पुत्र हैं, वे किरीटधारी धनञ्जय ही नारीवेश धारण किए यहाँ आ रहे हैं। आज ये हमें जीतकर इन गौओं को लौटा ले जाएँगे, उस दुर्योधन की रक्षा कीजिए॥'

इसके बाद अर्जुन ने चित्रगन्धर्व से प्राप्त सम्मोहनास्त्र (सुगन्धास्त्र) का प्रयोग किया और वहाँ पर देखते ही देखते सब मूर्छित हो गए, फिर अर्जुन ने विराट् के पुत्र उत्तर कुमार से कहा कि तुम्हारी बहन ने वीरों के वस्त्र मँगाये हैं। तुम सभी वीरों के वस्त्र उतार लाओ, किन्तु भीष्म पितामह से सावधान रहना, क्योंकि वो इस सम्मोहनास्त्र के जाल में नहीं फसेंगे।

क्या पता आपका ही कोई वैज्ञानिक ऐसा कोई अस्त्र निकाले, जिससे चारों ओर सुगन्ध फैले। प्रयास करना आपका कर्त्तव्य है। ऐसा कभी नहीं रहा कि आपके पास कोई था ही नहीं, आपके पास योद्धा थे, नीतिज्ञ थे, वीर थे, किन्तु एक ही कमी थी- आपस की फूट, ईर्ष्या, द्वेष

---

[६] महाभारत विराट् पर्व अध्याय-४० श्लोक-१०

आदि। पहले एक भजन गाते थे- **आपस की फूट के कारण बार-बार बदली यह राजधानी है। दिल को दुःखाने वाली दिल्ली की कहानी है।** अतः हम सभी पुनः एक जुट हों।

श्रीकृष्ण जी का चक्रसुदर्शन बहुत प्रसिद्ध है। क्या आप चक्रसुदर्शन की कथा जानते हैं? एक बार अश्वत्थामा द्वारिका आया, तो श्रीकृष्ण ने पूछा- यहाँ आने का कष्ट क्यों किया? तब अश्वत्थामा ने कहा कि यदि आप मना न करें, तो मैं कहूँ। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम्हें कैसे विश्वास हो गया कि मैं तुम्हें मना कर दूँगा, बताओ क्या चाहते हो? अश्वत्थामा ने कहा कि मुझे आपका चक्रसुदर्शन चाहिए। श्रीकृष्ण उसके कपटी व्यवहार को जानते थे। श्रीकृष्ण जी ने सङ्केत देते हुए कहा कि वहाँ रखा है, उठा लो। अश्वत्थामा ने उसे उठाने की कोशिश की। जब आसानी से नहीं उठा, फिर उसने दोनों हाथ लगाकर सम्पूर्ण पुरुषार्थ से उठाया, फिर भी चक्रसुदर्शन नहीं उठा। पुनः लज्जित होकर अपने स्थान पर आ बैठा। तब श्रीकृष्ण ने पूछा कि तुम चक्रसुदर्शन क्यों माँग रहे थे? अश्वत्थामा ने कहा कि यदि मेरे पास चक्रसुदर्शन आ जाता तो मैं युद्ध में सर्वप्रथम आपको ललकारता, तो यह अश्वत्थामा इतना कपटी था।

अतः श्रीकृष्ण ने युद्ध में कहा था कि अर्जुन जाओ, क्योंकि इसे ब्रह्मशिलास्त्र का प्रयोग करना तो आता है, परन्तु उपसंहार करना नहीं आता, किन्तु तुम दोनों बात जानते हो, अतः तुम जाओ। आगे कथा में क्या हुआ यह सब आप जानते हैं।

वेद की रक्षा करने के लिए हम पाञ्चजन्य बनें, जिससे हम लोगों की सेवा कर सकें। परमात्मा आपको शक्ति दे।

॥ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

अथर्वेदीय विष चिकित्सा विज्ञान

डा० कन्हैयालाल पाराशर[1]

मनु महाराज का वेद विषयक उद्घोष है कि **"सर्वज्ञानमयो हि सः"** इसी तथ्य के प्रबल समर्थक सम्मानित विद्वान् राष्ट्रपति पुरस्कार विजेता, शिरोमणि पुरस्कार से सम्मानित प्रिंसिपल देवदत्त भट्टि का एक ग्रन्थ **"चिकित्सा के आदि स्रोत वेद"** उत्तर क्षेत्र पटियाला से प्रकाशित है। इन्हीं का एक अन्य ग्रन्थ **"वैदिक भैषज्य"** चौखम्भा की काशी आयुर्वेद ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित है। ये दोनों ग्रन्थ प्राप्य हैं। इन दोनों ग्रन्थों में मान्य लेखक ने आयुर्वेदीय भैषज्य पर प्रभूत प्रकाश डाला है। वैदिक चिकित्सा विज्ञान के चमत्कारिक रहस्यों को समझने के लिये आयुर्वेद के प्राचीन आचार्यों के द्वारा लिखित **'चरकसंहिता, सुश्रुत संहिता, माधव निदान, अष्टाङ्ग हृदय'**आदि अनेक ग्रन्थ भी समुपलब्ध हैं। आज चिकित्सा की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। किन्तु वैदिक (आयुर्वेदीय) चिकित्सा विज्ञान इन सबमें प्राचीन है।

अथर्ववेद का प्राचीन नाम **'अथर्वाङ्गिरस'** है तथा यही नाम अथर्ववेद की प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में भी मिलता है।

---

[1] **विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोधसंस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर (पंजाब)**

अथर्वन् तथा अङ्गिरा ये दोनों प्राचीन ऋषि थे। ये दोनों ऋषि मूलरूप से अथर्ववेद द्रष्टा (साक्षात्कर्ता) थे। डा० भट्टि ब्लूम फील्ड को उद्धृत करते हुये लिखते हैं कि अथर्वा सात्त्विक मन्त्रों के द्रष्टा थे और अङ्गिरा तामस मन्त्रों के द्रष्टा रहे थे। सात्त्विक मन्त्रों में सकारात्मक मङ्गल और जन-जन के कल्याण की परमभूत भावना व्यक्त हुई है। जबकि तामस मन्त्रों में आभिचारिक (जादू टोना) की प्रधानता है[२]। अथर्ववेद को ब्रह्मवेद और अङ्गिरा वेद भी कहा जाता है। परन्तु अथर्ववेद सर्वाधिक रूप से प्रचारित नाम है। अथर्ववेद के ऋषि अग्नि पूजक थे[३]।

मानवजीवन को सुखमय बनाने के लिये जिन-जिन साधनों तथा उपायों की आवश्यकता समझी गयी, उनकी सिद्धि के लिये किये जाने वाले कार्य-कलापों का विधान अथर्ववेद में मिलता है। आयुर्वेद को प्राचीन परम्परा में यद्यपि ऋग्वेद का उपवेद माना गया है। किन्तु अथर्ववेद में आयुर्वेद-विषय सर्वाधिक विस्तार से वर्णित है, अतः आयुर्वेद के आचार्यों ने अथर्ववेद के उपवेद अथवा पञ्चम वेद के रूप में आयुर्वेद का उल्लेख किया है। हमारी समझ में तो अथर्ववेद आयुर्वेद का एक विश्वकोश है।

अथर्ववेद में नाना रोगों की चिकित्सा का साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। प्रस्तुत शोधपत्र में हमारा उद्देश्य एकमात्र अथर्ववेदीय विष चिकित्सा विज्ञान पर प्रकाश डालना है।

अथर्ववेद में विषों के दुष्प्रभाव को समूल नष्ट करने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। विष के विनाशकारी दुष्प्रभाव को दूर करना विष चिकित्सा है। अथर्ववेद के अनेक सूक्त विष चिकित्सा के वर्णन से भरे

[२]वैदिक भैषज्य, ले० देवदत्त भट्टि

[३]वही

पड़े हैं। सामान्यतः विष दो प्रकार के होते हैं। अकृत्रिम विष तथा कृत्रिम विष। इनमें अकृत्रिमविष के भी दो प्रकार हैं- एक स्थावर विष दूसरा जङ्गम विष। इन दोनों को जड़विष तथा जङ्गम विष भी कहा जाता है। कालकूट और हलाहल आदि जड़विषों की सूची में हैं। सर्पों, बिच्छुओं तथा अन्य गतिशील कीटों, पशु-पक्षियों में पाया जाने वाला विष जङ्गम विष कहलाता है। कहना न होगा कि ये दोनों प्रकार के विष (जड़ और जङ्गम) अकृत्रिम ही होते हैं। कृत्रिम विष तो नाना प्रकार के द्रव्यों और औषधियों के सम्मिश्रण से बना होता है। इसे ही **'गर'** भी कहा जाता है। यह अति घातक होता है। वैसे तो सभी प्रकार के विष तीव्र और अल्प प्रभाव वाले होते हैं । कुछ तो अति तीव्र प्रभावी विष और दूसरे अल्पप्रभावी विष कहे गये हैं। मात्रा के भेद से भी इनका प्रभाव तीव्र अथवा मन्द होता है।

अथर्ववेद में वर्णित विष चिकित्सा की विधियों को निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है -

१. **औषधियों द्वारा विष चिकित्सा**
२. **वैदिक मन्त्रों द्वारा विष चिकित्सा**
३. **अग्नि द्वारा विष चिकित्सा**
४. **जल द्वारा विष चिकित्सा**
५. **मृत्तिका द्वारा विष चिकित्सा**

विष-निवारण की कतिपय उत्तम विधियों के साक्ष्य इस प्रकार हैं -

१. औषधियों द्वारा विष चिकित्सा-

अथर्ववेद में सोमरस का पान विषनाशक माना गया है। सोमरस का पान करने वाला विषों के दुष्प्रभावों से मुक्त रहता है -

स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्[४] ।

[४]अथर्ववेद ४.६.१

अथर्ववेद में ऐसी अनेक औषधियों के वर्णन मिलते हैं जो विष के निवारण में रामबाण हैं। **'ताबुव'** और **'तस्तुव'** औषधियाँ विषनाशक हैं-

ताबुवेनारसं विषम्[५]।

तस्तुवेनारसं विषम्[६]।

ताबुव और तस्तुव औषधियों के गुण कटु तुम्बी (कड़वी लौकी) और तिक्त कौशातकी (कड़वी तौरई) में भी मिलते हैं। इसको वमन कारक बताया गया है। अथर्ववेद में निर्दिष्ट निम्न पाँच औषधियों को सर्प विषनाशक कहा गया है-

१.दर्भ (कुश) २. शोचि ३. तरूणक (रोहित तृण, सुगन्ध तृण या कतृण) ४. अश्ववार या अश्ववाल (कास नामक तृण) ५.परुषवार (मुंज या मूंज)। इस विषय का मन्त्र है-

दर्भः शोचिस्तरूणकमश्वस्यवारः परुषस्य वारः'[७]। अथर्ववेद में अरधुष और पैदव को सर्प विष नाशक कहा है -

पैद्वो हन्ति कसर्णील'[८]। ये दोनों औषधियाँ सफेद आक की पोषक हैं। अथर्ववेद में ही वर्णन मिलता है कि पैदव अर्थात् सफेद आक की जड़ और पुष्पों के चूर्ण को डाल देने से सर्प का भय दूर हो जाता है। मार्ग में यदि सर्प होगा तो स्वयं हट जायेगा[९]। आक के पुष्पों के रस और चूर्ण का इतना प्रभाव बताया गया है कि यदि यह सांप के खुले मुख में डाल दिया जाये तो वह खुले मुँह को बन्द नहीं कर पायेगा। यदि मुँह बन्द है तो

---

[५]अथर्ववेद ५.१३.१०

[६]अथर्ववेद ५.१३.११

[७]अथर्ववेद १०.४.२

[८]अथर्ववेद १०.४.४

[९]अथर्ववेद १०.४.६

खोल नहीं सकेगा।

'सयतं न वि ष्परद् व्यात्तं न संयमत्'[१०]**।**

'कुमारिका' नामक औषधि भी विष-नाशक के रूप में वर्णित है - **'कैरातिका कुमारिका'**[११]।

अपराजिता इसे हिन्दी में कोयल और विष्णुकान्ता भी कहा गया है। अथर्ववेद में इसे सांप और बिच्छु दोनों के विषों को नष्ट करने वाली औषध बताया गया है[१२]।

अथर्ववेद में **'तौदी' 'घृताची'** और **कन्या** नामक औषधियों को विषनाशक कहा है –

'तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि'[१३]**।**

अथर्ववेद में वर्णित उक्त तीन नाम बड़ी इलायची के हैं -

'स्थूलैला ... कन्या कुमारिका चैन्द्री

'कायस्था ... घृताची गर्भ सम्भवा'[१४]**।**

अथर्ववेद के एक अन्य सूक्त में मधुला, मधु, मधुलता और मधुश्चुत् औषधी का गुणगान मिलता है। इसे सर्प और बिच्छु के विष का नाशक बताया है। इसे ही मच्छर मारने की दवा भी बताया गया है-

'इयं वीरन्मधुजाता मधुश्चुद् मधुला मधुः[१५]**।**

अथर्ववेद में बाण के विष को दूर करने के लिये मुलहठी को भी

---

[१०]अथर्ववेद १०.४.८

[११]अथर्ववेद १०.४.१४

[१२]अथर्ववेद १०.४.१५

[१३]अथर्ववेद १०.४.२४

[१४]राजनिघण्टु १-२

[१५]अथर्ववेद ७.५६.२

उपयोगी बताया है।

'कङ्कपर्वणो विषमियं वीरुदनीनशत्'[१६]।

अथर्वसंहिता में करम्भक को विष निवारक कहा है।

'अथेदम् अधराच्य करम्भेण वि कल्पते'[१७]।

बच अथवा बचा औषधि भी विष नाशक बतायी गयी है ।

'वचसा स्थापयामसि'[१८]।

बिच्छू एवं विषधर कीटों के काटने पर पुनर्नवा का लेप महौषधि है।

'या रोहन्ति पुनर्णवाः'[१९]।

अथर्ववेद में अभिखाता का उल्लेख हुआ है। यह विषनाशक बतायी है –

'अभ्रिखाते न रूरुपः'[२०]।

'आल' नामक औषधि का प्रयोग भी विष रोधक कहा है।

'अपेहि निराल'[२१]।

अथर्ववेद के अनुसार उत्तानपर्ण औषधि भी विष निवारक है। यजपाठा अथवा पाढा लता बतायी गयी है। **सुभगा, देवजूता, सहस्वती** इसके अपर नाम हैं।

पैप्लाद संहिता में ककदन्ती औषधि भी प्रयोग सिद्ध है[२२]। सर्प विष

---

[१६]अथर्ववेद ७.५६.१

[१७]अथर्ववेद ४.७.२

[१८]अथर्ववेद ४.७.४

[१९]अथर्ववेद ८.७.५

[२०]अथर्ववेद ४.७.५ तथा पैप्लाद संहिता. २.१.१-५

[२१]अथर्ववेद ६.१६.३

[२२]पैप्लाद संहिता. ५.९.१

दूर करने के लिये कनक्रक भी चिह्नित की गई है - **'कनक्रकम्'**[२३]।

कान्दाविष भी विषनाशक बतायी गई है- **'कान्दाविषम्'**[२४]।

अथर्व संहिता में कुष्ठ (कूढ़) औषधि को भी विषघ्न बताया है । यह औषधि हिमालय के ऊपरी भागों में पायी जाती है-

'कुष्ठेहि तक्मनाशनः'[२५]।

नद्यमार, नद्यारिष और नद्याय इसके अन्य नाम हैं।

पैप्लाद के अनुसार क्रकोष्मा भी विष नाशक है[२६]। खादिर को भी विष नाशक कहा है[२७]।

अथर्ववेद में भी इसका उल्लेख है।

'अश्वत्थात् खदिराद्धवात्'[२८]।

पुण्डरीक भी विषनाशक है। श्वेत कमल को पुण्डरीक कहा जाता है । यह सरोवरों में पाया जाता है-

'ह्रदो वा पुण्डरीकवान्'[२९]।

'पुण्डरीकं नवद्वारम्'[३०]।

इसके अतिरिक्त पुष्कर को भी विषनाशक बताया गया है। पुष्कर का अर्थ कमल है। बभ्रू सहस्रपर्णी या शंख पुष्पी भी विषनाशक है-

'बभ्रु कल्याणि सं नुद'[३१]।

---

[२३]अथर्ववेद १०४.२२

[२४]वही

[२५]अथर्ववेद ५.४.१-१२ तथा १९.३९.१-१०

[२६]पैप्लाद संहिता ९.१०.९

[२७]पैप्लाद संहिता २.५८.१-६ तथा १६.४२.६-८

[२८]अथर्ववेद ५.५.५

[२९]अथर्ववेद ६.१०६.१

[३०]अथर्ववेद १०.८.४३

वृश्चिक जम्भन औषधि बिच्छु दंश निवारक है। पैप्पलाद संहिता का इसमें साक्ष्य है[३२]। शीपाला औषधि भी विषनिवारक है। यह नदी-तालाबों में उपलब्ध होता है। जन भाषा में इसे शैवाल अथवा सेवार कहते हैं- **'मधु परुष्णी शीपाला'**[३३]।

साल अथवा शाल वृक्ष भी विषनाशक है[३४]।

२. वैदिक मन्त्रों द्वारा विष-चिकित्सा -

मन्त्र-चिकित्सा अथवा विधिपूर्वक मन्त्रोच्चार-श्रवण से भी विष का प्रभाव दूर हो जाता है। प्रक्षेपास्त्रों - बाण आदि अथवा श्रृङ्ग-फाल आदि के लगने से जो विष शरीर में या शरीर के किसी अङ्ग में सङ्क्रमित हो जाये तो अथर्ववेदीय मन्त्रों द्वारा उसका शमन सम्भव है। इससे सम्बद्ध मन्त्र अधोलिखित हैं-

यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिर्वक्राच्चिदधि धन्वनः।
अपस्कम्भस्य शल्यान्निरवोचमहं विषम्॥
शल्याद् विषं निरवोचं प्राञ्जनादुत पर्णधेः।
अपाष्ठाच्छृङ्गात् कुल्मलान्निरवोचमहं विषम्॥
अरसस्त इषो शल्योऽथो ते अरसं विषम्।
उतारसस्य वृक्षस्य धनुष्टे अरसारसम्[३५]**॥**

उक्त मन्त्रों में विषों के अरस अर्थात् निष्प्रभाव करने का उल्लेख है। यहाँ विष भी अनेक कारणों से उत्पन्न बताये गये हैं। यह भी कहा

---

[३१]अथर्ववेद ६.१३९.३

[३२]पैप्लाद संहिता १९.४७.१-२

[३३]अथर्ववेद ६.१२.३

[३४]अथर्ववेद २.१४.१

[३५]अथर्ववेद ४.६.४-६

गया है कि विषोत्पादक स्थानों पर्वतों आदि को भी विषमुक्त किया जा सकता है और यह सब सम्भव है- मन्त्रबल से अथवा विभिन्न प्रकार की औषधियों के प्रभाव से। इसी अथर्व (४-६) सूक्त में- **सुपर्णस्त्वा गरुत्मान् विष प्रथममावयत्**[३६] इत्यादि मन्त्र में गरुड़ को विषोत्पादक बताया गया है। गरुड़ सर्प को खा जाता है। विषोत्पादक स्थानों को विष से मुक्त करने की बात इस मन्त्र में कही है-

'बध्रियस्ते ... पर्वतो गिरिर्यतो'[३७]

अथर्ववेद में एक अन्य सूक्त (६,९०,२) में मन्त्र बल द्वारा विष-चिकित्सा का विधान है-

यास्ते शतं धमनयोऽङ्गान्यनु विष्ठिताः।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि[३८] **॥**

इत्यादि मन्त्रों में नस-नाड़ियों में व्याप्त तथा शरीराङ्गों में फैले विषों के अपाकरण का उल्लेख है।

३. अग्निद्वारा विषचिकित्सा -

अथर्ववेद में विष की चिकित्सा अग्नि के प्रयोग से भी बतायी है। सांप का विष उतारने के निमित्त सर्प द्वारा काटे गये अंश को तप्त लोहे आदि से दाग देने पर सर्प का विष नष्ट हो जाता है। **'अग्निर्विषमहे निरधात्'**[३९] **।**

४. जल द्वारा विष चिकित्सा -

जल-चिकित्सा का आविष्कारक रुद्र को माना गया है। जल चिकित्सा को 'जलाषभेषज' कहा है। जल चिकित्सा को तो उग्रभेषज

---

[३६]अथर्ववेद ४.६.३

[३७]अथर्ववेद ४.६.८

[३८]अथर्ववेद ६.९०.२

[३९]अथर्ववेद १०.४.२६

अर्थात् शीघ्र प्रभावकारी (लाभकारी) दवा कहा गया है।

जलाषमुग्रं भेषजंतेन नो मृड जीवसे[४०]**।**

अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से जल- चिकित्सा का विधान है। नदी के जल में नहाने, तैरने आदि से सर्प का विष उतर जाता है-

सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यानिजमहेर्विषम्।
अहीनां सर्वेषां विषं परा वहन्तु सिन्धव[४१] **॥**

अथर्ववेद में नदियों एवं पर्वतों के झरने आदि के जल से सर्प विष दूर करने का वर्णन हुआ है- **मध्वा पृञ्चे नद्यः पर्वता गिरयो मधु।**[४२]

वस्तुतः नदी में बहुत देर तक स्नान किया जाये, झरने के नीचे बैठकर जलधारा को सिर पर लें तो विष उतर जायेगा। अथर्ववेद में 'वरणावती' को विषनाशक बताया गया है। वरणा नदी का नाम वरणावर्त पड़ा। जिसके तट पर आज-कल बरनावा पश्चिम उत्तरप्रदेश में नगर है। यहीं महाभारत का लाक्षागृह था। इस नदी का जल विषनाशक है -

'वारिदं वारयातै वरणावत्यामधि।
तत्रामृतस्यासिक्तं तेना ते वारये विषम्'[४३] **।**

यह नदी वरणा, मेरठ और बागपत जिलों की सीमा विभाजक है।

५. मृत्तिका द्वारा विष चिकित्सा -

अथर्ववेद में उल्लेख है कि दीमक समुद्र की मिट्टी को बाहर निकालकर बमी बनाती है। इस बमी की मिट्टी विषनाशक है -

---

[४०]अथर्ववेद ६.५७.२

[४१]अथर्ववेद १०.४.१९-२०

[४२]अथर्ववेद ६.१२.३

[४३]अथर्ववेद ४.७.१

यद् वो देवा उपजीका आसिञ्चन् धन्वन्युदकम् ।
तेन देव प्रसूतेनेदं दूषयता विषम्[४४] **॥**

सुश्रुत संहिता के कल्प स्थान में भी बमी की मिट्टी को दूध, घी, मधु के साथ मिलाकर पिलाने से सर्पदंश की चिकित्सा का विधान है।[४५]

इसके अतिरिक्त वेदों में तथा प्रसङ्ग प्राप्त अथर्ववेद में शल्यचिकित्सा द्वारा विषहरण के प्रमाण भी विद्यमान हैं-

अपस्कम्भस्य शल्यान् निरवोचमहं विषम् ॥
शल्याद् विषं निरवोचम्[४६] **॥**

इत्यादि मन्त्रों में शल्यचिकित्सा द्वारा विष को रक्त प्रवाह से दूर करने का विधान भी विद्यमान है।

विषय के अतिविस्तार में न जाते हुये प्रस्तुत शोधपत्र के उपसंहार में यही कहना है कि विष-निवारण की अथर्ववेदीय पद्धति अति सुगम सार्थक और साध्य है। आयुर्वेद से इतर अन्य दवाईयाँ विषनिवारण तो कर देती हैं, किन्तु उनका दुष्प्रभाव अन्य कई रोगों को जन्म दे जाता है। जबकि अथर्ववेदीय विषचिकित्सा का कोई उत्तरकालिक दुष्प्रभाव नहीं होता। हाँ, इतना अवश्य है कि विषप्रभावित व्यक्ति की चिकित्सा करने वाले चिकित्सक को अथर्ववेदीय विषचिकित्सा विज्ञान नितान्त आवश्यक और अनिवार्य है।

---

[४४] अथर्ववेद ६.१००.२

[४५] सुश्रुत कल्पस्थान ५.१७

[४६] अथर्ववेद ४.६.४-५

अथर्ववेदे अध्यात्मविद्या

प्रो० अरुणिमा रानी[१]

अस्मिन् संसारे अध्यात्मविद्यैव सा शक्तिः याऽऽनन्दप्रवाहिणी चित्तवृत्तिनिरोधे सहायिका मोक्षसुखदायिका जीवब्रह्मणोः स्वरूपनिर्देशिका धर्मोपदेशिका अभ्युदयनिर्वाहिका निःश्रेयसप्रवणा विनयमाधुर्यशीला संन्यासधर्मदिग्दर्शिका कठिनाऽपि सरला द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थापिका निर्बीजसमाधिप्रापिका कैवल्यविवेकादिगुणैर्भुवं दिवं चाप्यतिशेते। अनिर्वचनीयमनुपमेयमवर्णनीयं चाध्यात्मविद्यायाः महत्त्वम्। सा ह्यपूर्वा दिव्या अनुपमा च शक्तिः। सा साधकानां पाथेयभूता, गुणानां निधिः, यम-नियम- आसन-प्राणायाम- प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधीनामाकरः धृति-क्षमा-दम-अस्तेय-शौच-इन्द्रियनिग्रह-धी-विद्या-सत्य-अक्रोधादीनां खनिः व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानस्य सागरः विवेकजज्ञानस्यागारमस्ति अभूद् वर्तते वर्तिष्यते च। सा ईजानानां सेतुः, तितीर्षताम् अभयं पारम्, स्थैर्येण अचलम्, धैर्येण सागरं चास्ति। सा व्याधि-स्त्यान-संशय प्रमाद-आलस्य-अविरति-भ्रान्तिदर्शन-अलब्धभूमिकत्व-अनवस्थितत्वादीना मन्तरायाणामपाकर्त्री, दुःख-

[१]**संस्कृत विभागः, सनातनधर्ममहाविद्यालयः, मुजफ्फरनगरम् (उ.प्र.)**

दौर्मनस्य-अङ्गमेजयत्व-श्वास-प्रश्वास-विक्षेप-सहभुवानां निःसारयित्री च विद्यते। सैव आयुः सत्त्व-बल-आरोग्य-सुख-प्रीतिविवर्धनानां रस्यानां स्निग्धानां स्थिराणां हृद्यानां सात्विकप्रियानाम् आहाराणां परिचयं ददाति। सा वाचिकं तपसम् बोधयति। वाङ्मयं तपसं प्रति जागरयति। वाण्याम् अनुद्वेगकरं वाक्यं संचारयति। सत्यं प्रियहितं च सम्भाषणमाविर्भावयति। स्वाध्यायाभ्यसनं प्रथयति। मानसं तपसं प्रति सचेतयति। मनः प्रसादं सम्पोषयति, सौम्यत्वमाचिनोति, मौनं ज्ञापयति, आत्मविनिग्रहं प्रथयति, भावसंशुद्धिं निवेदयति। को हि शक्तो अध्यात्मविद्यायाः शक्तिं मातुम्। सा हि आचरणमात्रेण त्रिविधदुःखानाम् आत्यन्तिकनिवृत्तिं कर्तुं समर्था। सा ह्याह्लादनेन चन्द्रमसं दीप्त्या भानुं चातिशेते।

वेदेषूपनिषत्सु धर्मशास्त्रेषु चाध्यात्मविद्यायाः महत्त्वं गौरवं चानेकधा प्रतिपाद्यते। अथर्ववेदे विंशं काण्डम्। तत्र च अध्यात्मविद्याप्रतिपादकाः बहवः मन्त्राः सन्ति। वाजिन् सामथ्र्यवान् आत्मदेव! उदेहि अभ्युदयं निःश्रेयसं प्राप्नुहि- 'उदेहि वाजिन्।' अथर्ववेदे कः पन्था? विषयेऽस्मिन् प्रोच्यते- '**मैतं पन्थामनु गाः।**'[२] इस राह पर मत चल' इति हिन्दीभाषायाम्। मार्गद्वयं प्रोच्यते कठोपनिषदि '**श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः**।'[३] श्रेयमार्गः प्रेयमार्गश्च। कठोपनिषत्कारः मन्यते यत् मन्दो जनः प्रेयसं वृणीते '**प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।**'[४] धीरश्च विवेकेन जानाति कः मार्गः श्रेष्ठ आचरणीयः - '**तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।**'[५] एवं द्वौ पुरुषौ विद्येते- मन्दः धीरश्च। प्रेयमार्गविषये प्रोच्यते- '**एषः**

[२]अथर्ववेदः - ८/१२१०

[३]कठोपनिषद् - १/२/२

[४]कठोपनिषद् - १/२/२

[५]कठोपनिषद् - १/२/२

भीमः।'[६] '**मा प्र पत्था**'[७] प्रेयमार्गः भयङ्करः मा प्राप्नुहि एतं मार्गम्। रामायणे दशाननमुखेन प्रेयमार्गं निर्दिश्यते- '**भुङ्क्ष्व भोगान् यथाकामं पिब भीरु रमस्व च।**'[८] हे सीते! **पिब विहर रमस्व भुङ्क्ष्व भोगान्।**'[९] सीता माता वेदोपदेशं जानाति- '**मैतं पन्थामनुगाः।**'[१०] कठोपनिषदि प्रोच्यते यत् मूढजनः विनश्वरसंसारं न जानाति। सः तु कथयति अयमेव लोकः नास्ति अपरः इति। सैव जन्ममरणचक्रे पुनरायाति- '**न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्। अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।**[११] वैराग्यशतके भर्तृहरिणा शस्यते- '**पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।**'[१२] प्रेयोमार्गे भयं श्रेयोमार्गे अभयमस्ति। '**भयं परस्तात्**'[१३] '**अभयं ते अर्वाक्**'[१४] अथर्ववेदे अधिकं कल्याणकरं श्रेयमार्गं प्राप्नुहि इति प्रोच्यते। '**भद्रादधि श्रेयः प्रेहि।**'[१५] छान्दोग्योपनिषदि शस्यते ऋषिणा - '**यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखं, भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति।**'[१६] भद्रशब्दः '**भदि कल्याणे सुखे च'**[१७] इति धातोः निष्पद्यते।

---

[६]अथर्ववेदः - ८/१/१०
[७]तत्रैव
[८]वाल्मीकिरामायणम् सुन्दरकारण्डे - २०/२४
[९]वाल्मीकिरामायणम् सुन्दरकाण्डे - २०/३५
[१०]अथर्ववेदः - ८/१/१०
[११]कठोपनिषद् - १/२/६
[१२]वैराग्यशतकम् - ७
[१३]अथर्ववेदः - ८/१/१०
[१४]तत्रैव
[१५]अथर्ववेदः - ७/८/१
[१६]छान्दोग्योपनिषद् - ७/२३/१
[१७]धातुपाठः

ऋग्वेदे भद्रशब्दः परिभाषितं - विद्वांसः यं मार्गं प्राप्नुवन्ति तद् भद्रम्। '**विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवाः।**'[१८] कठोपनिषदि भद्रमार्गविषये कथितं यत् एषः मार्गः साधारणजनोपदेशेन सुविज्ञेयो न भवति। एषः तु स्वात्मसंवेद्यो विद्यते। एषः अतर्क्यः तर्केण न प्राप्तुं योग्यः। अणुप्रमाणादपि अणीयान् अतिसूक्ष्मो मार्गः। '**न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः। अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।**'[१९] नीतिशतकेऽपि एषः स्वानुभूतिविषयः मार्गः। '**स्वानुभूत्येकमानाय।**'[२०] कठोपनिषत्कारः कथयति- '**नैषा तर्केण मतिरापेनया।**' यदा स्वानुभूतिर्जायते तदा एषा मतिः केनापि तर्केण आपनेया न भवति। प्रत्यक्षाय नान्यः प्रमाणार्हः। नचिकेता कथयति अध्रुवैः ध्रुवं न प्राप्यते। अनित्यं जगत् ज्ञातम्। सन्देहनिवारिका नाचिकेतोऽग्निः चितं मया। अनित्यद्रव्यत्यागेनैव नित्यं द्रव्यं प्राप्तुं योग्यः। '**जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं नह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।**'[२१] श्रेयमार्गः कठिनः दुष्करः। कामक्रोधादिशत्रवः बहूनि रूपाणि धृत्वा साधुरूपेण आगच्छन्ति। '**रूपाणि प्रतिमुंचमानाः।**'[२२] प्रेयमार्गे तु महती विनष्टिः। अथर्ववेदे यज्ञेन देवान् बोधय इति प्रोच्यते। देवानां बोधनेनैव आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं च बुद्धिमाप्नोति।[२३] शतपथब्राह्मणे शस्यते- '**न वै देवाः**

---

[१८]ऋग्वेदः - २/२३/१९

[१९]कठोपनिषद् - १/२/८

[२०]नीतिशतकम् -१

[२१]कठोपनिषद् - १/२/१०

[२२]यजुर्वेदः - २/३०

[२३]अथर्ववेदः - १९/६३/१

स्वपन्ति।'[२४] '**जाग्रति देवाः।**'[२५] **देवाः जागृतं जनमिच्छन्ति सुप्तं न स्पृहयन्ति। 'इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्राय स्पृहयन्ति**।'[२६] अथर्ववेदे यज्ञमहिमा प्रोक्ता। यज्ञः समर्थभूतः सः वृद्धिं प्राप्नोति। सैव देवानामधिपतिः। सैव द्रविणं धनं धारयति। '**यज्ञो बभूव स आ बभूव।**'[२७] शतपथब्राह्मणे कथितम्- '**यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।**'[२८] यजुर्वेदे प्रोक्तम्- श्रेष्ठतमाय कर्मणे अर्पयतु आत्मानम्। '**देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे आप्यायध्वम्।**'[२९] यज्ञकर्माणि कृत्वैव शतं वर्षाणि जीवितुम् इच्छेत्- '**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।**'[३०] यजुर्वेदे निर्दिश्यते एतत् शरीरं यज्ञीयं वर्तते। यज्ञार्थं विद्यते। यज्ञकर्मकरणाय प्रदत्तम् ईश्वरेण। '**इयन्ते यज्ञिया तनूः।**'[३१] यज्ञ उन्नतिदायकः ऐश्वर्यप्रापकः - '**यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूत।**'[३२] शतपथब्राह्मणे यज्ञः सर्वभूतानां सर्वदेवानां आत्मा इति प्रोच्यते। ऋतचिन्तनेन पापनाशो भवति- '**ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति**।'[३३] अध्यात्ममार्गानुसारिणां प्रथमः गुणः ऋतप्रशंसकः द्वितीयश्च अकुटिलः ऋजुताधारकः। यः ऋतं ऋजुतां च धारयति सैव तं रस-स्वरूपं परमेश्वरं प्राप्नोति। प्राप्य च

---

[२४]शतपथब्राह्मणम् - ३/२/२/२२

[२५]तत्रैव - २/१/४/७

[२६]ऋग्वेदः - ८/२/१८

[२७]अथर्ववेदः - ७/५/२

[२८]शतपथब्राह्मणम् - १/७/१/५

[२९]यजुर्वेदः - १/१

[३०]तत्रैव - ४०/२

[३१]तत्रैव - ४/१३

[३२]ऋग्वेदः - ३/३२/१२

[३३]ऋग्वेदः - ४/२३/८

आनन्दीभवति त एव धीराः विप्रपदं प्राप्नुवन्ति। तैत्तिरीयोपनिषदि प्रोच्यते- '**रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।**'[३४]

अध्यात्ममार्गे त्यागस्य महिमा अपूर्वा निर्दिश्यते। यज्ञ-शब्दः 'यज देव पूजासंगतिकरणदानेषु' इति धातोः निष्पद्यते। देवपूजायां संगतिकरणे दाने च त्रिषु कार्येषु त्यागभावः सर्वोपरि विद्यते। स्वत्वं विहाय परार्थं करणम्। छान्दोग्योपनिषदि विहितम्- '**पुरुषो वाव यज्ञः।**'[३५] पुरुषजीवनं यज्ञस्वरूपमेव। अग्निहोत्रे '**इदन्न मम**' अस्यैव भावनया ओतः प्रोतश्च कृत्वा हविर्दानं दीयते एवं अग्निहोत्रे त्यागभावनाया अभ्यासः क्रियते। अथर्ववेदे दुर्व्यसनत्याग अपरिहार्यः अध्यात्ममार्गे इति प्रोच्यते - '**उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र।**''[३६] उलूकसदृशम् अन्धकारप्रियत्वम् अज्ञानप्रवणत्वं त्यज। शुशुलूकसमं 'भेडिया' इति अकारणहिंसावृत्तिं त्यज। श्वानयुक्तं मत्सरभावम्अपाकुरु। कोकसमानं हंससदृशं कामभावं दूरीकरोतु। सुपर्णगतिं अहङ्कारवृत्तिं त्यज। गृध्रस्य लोभभावं त्यजतु। एवम् अध्यात्ममार्गे मोह-क्रोध-मत्सर-काम-मद-लोभादिदुर्व्यसनानामपाकरणमेव श्रेयः। संसारसागरतरणाय अशिवानाममंगलानां दुर्गुणानां भारः अत्रैव त्याज्यः। दुर्व्यसनत्यागेनैव तात्त्विकबोधो गम्यते। अथर्ववेदे ईर्ष्याविनाशनाय प्रोच्यते- '**ईर्ष्यायां ध्राजिं।**[३७] समाधिपादे चित्तप्रसाद्गाय सूत्रमिदं प्रोक्तम्- '**मैत्रीकरुणामुदिता**'[३८] सुखीजनं प्रति मैत्री भावः दुःखीमनुष्यं प्रति

---

[३४]तैत्तिरीयोपनिषद् - ११

[३५]छान्दोग्योपनिषद् - ३/१६/१

[३६]अथर्ववेदः - ८/४/२२

[३७]अथर्ववेदः - ६/१८/१-३

[३८]योगदर्शनम् - समाधिपादः - ३३

करुणाभावः पुण्यशालिनं प्रति मुदिताभावः अपुण्यशालिनं प्रति उपेक्षाभावः करणीयः श्रेयस्करश्च। ईर्ष्या नोचिता।

छान्दोग्योपनिषदि कथाख्यानाश्रयेणाध्यात्मसदृशं निगूढतत्त्वनिरूपणं सरलतया तदभिव्यक्तिश्चाध्यात्ममार्गे उपनिषदां महत्त्वम् एधयति। उपनिषदां तादृशी मनोहरा शैली भावाभिव्यक्तिप्रक्रिया च मन्दोऽपि मनुष्यो विविधविषयावगाहि ज्ञानं सरलतया प्राप्नोति। तत्रैव इन्द्रविरोचनयोराख्यानं[३९] विद्यते। प्रजापतिरुवाच य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः। स सर्वान् च लोकान् आप्नोति। शरीरमिदं नैव आत्मा। इदं तु मरणधर्मा। यः पश्यति चक्षुसाधनेन, यो जिघ्रति घ्राणमाध्यमेन, यो वदति वाकसाधनेन यः श्रृणोति श्रवणसाधनेन स आत्मा, यश्चिन्तयति चित्तसाधनेन स आत्मा। यः जलपात्रे दर्पणे स्वप्नावस्थायां सुषुप्त्यवस्थायां दृश्यते, नैव स आत्मा, इदं तु शरीरम्। अशरीरी आत्मा। शरीरस्य सुषुप्त्यवस्था भवति आत्मनः सुषुप्तस्थानम्। यस्य सुषुप्ति-अवस्था भवति तत् तु शरीरं मरणधर्मयुक्तम्। यस्य च सुषुप्तस्थानं भवति तस्य च स्वरूपेऽवस्थानं भवति। उपनिषत्सु वेदानां सारभागः सारल्येन संवादरूपेण आख्यायिकामाध्यमेन च सरलां रुचिरां शैलीमाश्रित्य प्रतिपाद्यते। अथर्ववेदे ईश्वरः सर्वं जानाति इति प्रोच्यते। अध्यात्ममार्गे सर्वप्रथमं इदमेव ज्ञातव्यमस्ति यत् सः सर्वत्र विद्यते। यः तिष्ठति निर्जने वने, जानाति च न कोऽपि पश्यति, यः चरति, यः वंचति अन्यान् सरलचित्तान्, यः षड्यन्त्रेण पीडयति अन्यान्, यः भयं संचारयति यश्च

[३९]छान्दोग्योपनिषद् - ८/७/

गुप्तरूपेण मन्त्रयते तत्र सर्वत्रं सः तृतीयः पुरुषः वरुण ईश्वरः।[४०] तं सर्वान्तर्यामिनं ज्ञात्वा नैव पापकर्म करणीयम्। प्राणोपासनायाः फलं प्रोच्यते अथर्ववेदे। 'यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।'[४१] योगदर्शने शस्यते- 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।[४२]' प्राणायामात् अज्ञानावरणं नश्यति। मनुनाऽपि निर्दिश्यते - 'दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्।'[४३] प्राणायामेन इन्द्रियाणां दोषाः दह्यन्ते नश्यन्ति। भगवत्ज्ञानेन मृत्युभयनाशो जायते।

कामनारहितं धीरं अमृतं स्वयंभुवं रसेन युक्तं तृप्तं सर्वातिशयं अजरं नवीनं युवानं परमात्मानं ज्ञात्वा मत्त्वा मृत्युभयं नश्यति इति प्रोच्यते अथर्ववेदे- '**तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः।**'[४४] मुण्डकोपनिषदि निर्दिश्यते तमेव व्यापकतत्त्वं परमात्मानं विद्यात् अन्या सर्वा वार्ता व्यर्था एव। एषः परमात्मा एव अमृतस्य सेतुः। '**तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथ।**'[४५] निरुक्तभाष्यस्य नैगमकाण्डे 'अंहुरः' इति पदव्याख्याप्रसंगे '**सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामे - कामिदभ्यंहुरोऽगात्**।[४६]' इति मन्त्रो वर्तते। 'अंहुरः पापी इति। महर्षिणा यास्केन मन्त्रभाष्ये सप्तमर्यादाः प्रदिष्टाः। प्रथमा स्तेयम् द्वितीया तल्पारोहणम्, तृतीया ब्रह्महत्या चतुर्थी भ्रूणहत्या पंचमी सुरापानम् षष्ठी

[४०] अथर्ववेदः - ४/१६/२
[४१] अथर्ववेदः - ११/७/१९
[४२] योगदर्शनम् - २/५२
[४३] मनुस्मृतिः - ६/७१
[४४] अथर्ववेदः - १०/८/४४
[४५] मुण्डकोपनिषद् - २/२/५
[४६] निरुक्तभाष्यम् - नैगमकाण्डः - ६/५/१११

दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवनम् सप्तमी च मर्यादाऽस्ति पातके कृते सति अनृतकथनम्। आसां करणे पापो भवति। अध्यात्ममार्गे अपरिहार्याः एताः मर्यादाः।

महर्षिः यास्कः कथयति- '**तासामेकामप्यभिगच्छन् अंहस्वान् भवति**।' अथर्ववेदस्य पंचमकाण्डस्य प्रथमं सूक्तं अध्यात्मविद्याप्रदायकं वर्तते। तस्यैव सूक्तस्य मन्त्रोऽयं वर्तते। ऋग्वेदेऽपि मन्त्रोऽयं विद्यते। अथर्ववेदे आत्मोन्नतेः साधनं निर्दिश्यते- '**आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।**'[४७] श्रेयांसं कल्याणं परमं प्राप्नुयात् समं समाने जने अतिक्राम अग्रणीर्भवतु। '**अश्मवर्म मेसि**'[४८] ईश्वरविश्वासी जनः तं परमेश्वरम् अश्मवर्म इति मन्यते कानि व्रतानि तानि यानि जीवनं साफल्यं लम्भयन्ति मनुष्ये अध्यात्मं चादधति? अहिंसा। निरुक्तभाष्ये व्रतमिति कर्मनासु पठितम्। अथर्ववेदे पंचदश काण्डस्य प्रथमसूक्तस्य देवता अध्यात्म व्रात्यः च वर्तेते। व्रात्यः व्रतचारी इति। व्रतपालक एव अध्यात्मोन्नतिं कर्तुं शक्यते इति शस्यते अथर्ववेदे। यजुर्वेदे[४९] कथितं यो मानवो विद्याविद्ययोः स्वरूपं सहैव वेत्ति सोऽविद्यया-कर्मोपासनया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया यथार्थज्ञानेन मोक्षं लभते। योगदर्शनस्य साधनपादोऽपि अध्यात्ममार्गे बहुसहाय्यो वर्तते। तत्रैव अविद्याया लक्षणं दत्तम्- **अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।**'[५०] अनित्ये संसारदेहादिषु नित्यत्वबुद्धिरविद्या, पावित्र्यबुद्धिरविद्या, विषयोपभोगादिषु दुःखेषु सुखात्मिका बुद्धिः तृतीयमङ्गम्। अनात्मन्यात्मबुद्धिस्तुरीयम्।

---

[४७]अथर्ववेदः - २/११

[४८]अथर्ववेदः - ५/१०

[४९]यजुर्वेदः - ४०/१४

[५०]योगदर्शनम् - २/५

चतुर्विधमिदं विपरीतज्ञानमविद्येत्युच्यते। आत्मज्ञानं तदैव प्राप्तुं शक्यते मानवो यदि सोऽविद्यां जानाति परित्यजति च। का च विद्या या जीवने धारणीया। अनित्ये अनित्यताज्ञानं, नित्ये नित्यताज्ञानं, अपवित्रे अपवित्रबुद्धिः, दुःखे दुःखज्ञानं, सुखे सुखज्ञानं, अनात्मन्यनात्मबुद्धिः, आत्मनि चात्मज्ञानं विद्या इति। विद्या-वेत्ति यथावत् तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा 'विद्या'।

अविद्या- यया तत्स्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्यमिन्नन्यन्निश्चिनोति यया सा 'अविद्या' सत्यभाषणादिधर्म्र्यकर्मणामनुष्ठानं मिथ्याभाषणाद्यधर्म्र्यकर्मणां परित्याग एवाध्यात्ममार्गाय श्रेयस्करम्। सत्यार्थप्रकाशस्य नवमसमुल्लासोऽपि अध्यात्ममार्गे सहाय्यो वर्तते। नवमः समुल्लासः विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये वर्तते। तत्र महर्षिदयानन्देन लिखितं- 'प्रत्यहं न्यूनातिन्यूनं होराद्वयं यावत् मुमुक्षुध्यायेद्येनान्तराणि मनः प्रभृतीनि वस्तूनि प्रत्यक्षतो दृश्यरेन्।' सप्तमे समुल्लासे ईश्वरवेदविषयो वर्तते। तत्र महर्षिदयानन्देनोपदिष्टम् - '**यथा वै शीतातुरस्य वह्निसामीप्येन शीतं विनिवर्तत तथैव परमात्मनः उपासनया सामीप्येन समुपसत्त्या अखिलदोषदुःखान्युच्छिद्य परमेश्वरस्य गुणकर्मस्वभावा इव जीवात्मनोऽपि गुणकर्मस्वभावाः पूयन्ते**।' उपासनया ह्यात्मनो बलं तावत्प्रवर्धिष्यते येन पर्वत इव महादुःखसंक्लिष्टोऽ नोद्विविजिष्यते सर्वं च सहिष्यते। यो वै परमात्मनः स्तुतिप्रार्थनोपासना न विधत्ते स एव कृतघ्नो महामूर्खश्च भवति। मैत्रायणीयोपनिषदि[५१] निर्दिष्टम् - समाधियोगेन यस्य पुरुषस्याविद्यादयो मला विनाशमाप्ताः, येन चात्मस्थेन सता परमात्मनि समासंजितः चेतः तेन परमात्मनो योगेन यत्सुखं लभ्यते यद् वाचा वर्णयितुं

[५१]मैत्रायणीयोपनिषद् - ४/९

न शक्यते तद्धि स्वान्तः करणेनानुभवति जीवात्मा। सामीप्यसम्प्राप्तिरुपासनाशब्दार्थः। अष्टांगयोगेन परमात्मनः समीपेऽवस्थातुं सर्वव्यापिसर्वान्तर्यामिरूपेण प्रत्यक्षयितुं चावश्यकं सर्वकार्यजातमनुष्ठेयम् एवमध्यात्ममार्गे यमनियमासनादि-अष्टांगयोगानामभ्यासोऽवश्यम्भावी वर्तते। अथर्ववेदे एकोनविंशतिकाण्डे आत्मनः स्वरूपं प्रयच्छति- '**अयुतोऽहमयुतो मे आत्मा**'[५२] अयुतं पूर्णमिति। पूर्णोऽहम्, मे आत्मा पूर्णः, मे चक्षुः पूर्णम्, मे श्रोत्रं पूर्णम्, मे प्राणः पूर्णः, में अपानः पूर्णः, मे व्यानः पूर्णः, अहं सर्वः पूर्णः। एवं पूर्णत्वमङ्गीकृत्यैव जीवने यत्न्यूनत्वं तद् परिहरणीयम्।

अथर्ववेदस्य षोडशकाण्डे आध्यात्मिकविजयस्य दुःखविमोचनस्य च विषयो वर्तते। 'आत्मदूषिः'[५३] ये कर्माणि आत्मदूषणाय 'तनूदूषिः' ये च शरीरदूषणाय 'इदं तमतिसृजामि' तानि कर्माणि परित्यजामि। एवमात्मोद्घोषो वर्तते। '**मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानानां भूयासम्।**'[५४] एतदपि चात्मोन्नतेः साधनं यत् अध्यात्मरयीणां वयं मूर्धा भवेम। तत्र 'अजैष्म जितम्' इति पदयोरनुवृत्तिरनेकवारमागच्छति। आध्यात्मिकक्षेत्रे शरीरेन्द्रिय मन-प्राण- बुद्धिरहंकार- चित्त-काम- आत्मा-प्रकृति-विकृतिरित्यादीनां सम्बन्धो वर्तते। एषां निर्दोषसंरक्षणम् शक्त्य परिपूर्णकरणमात्मोन्नतिसाधने निर्विघ्नतया समासतिकरणं आध्यात्मिकविजयप्राप्तिसाधनं भवति। तत्र आत्मोन्नतौ चत्वारि साधनानि प्रोच्यते। इन्द्रियदमनम् इन्द्रियशमनम् अनयोः शरीरशुद्धिर्जायते मनसः

---

[५२]अथर्ववेदः - १९/५१

[५३]अथर्ववेदः - १६/१/३

[५४]अथर्ववेदः - १६/१/३

शुचै मानसं बलं वर्धते आत्मशुद्ध्या आत्मोन्नतिर्जायते।[५५] भगवत्गीतायामुपदिष्टम् यत् प्रसन्नता अध्यात्ममार्गे सर्वोपरिसाधनम्। '**प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।**'[५६] सर्वदुःखनिवृत्तिस्तु यदा प्रसादेन प्रसन्नचित्तेन जायते तर्हि प्रसन्नचित्तमावश्यकमाध्यात्मोन्नतौ। हे प्रभो! अस्मान् निंद्यपापात् मुंच- '**मुमुक्तमस्मान्दुरितादवद्यात्।**'[५७] अमरत्वं प्रदेहि - '**अमृतमस्मासु धत्तम्।**'[५८] मस्तिष्कं विश्वरूपं यशः इति कथितम्। एतत् तिर्यग्बिलं वर्तते। '**तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुघ्नः तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।**[५९] सप्त ऋषयः सप्तेन्द्रियाणि सन्ति इति प्रोच्यते अथर्ववेदे- '**तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः।**[६०] एते ऋषयः एकस्मिन्नेव स्थाने वसन्ति अस्य महतः आत्मनः गोपा रक्षकाः सन्ति।

एवं पूर्वोक्तेन विवेचनेन स्फुटमेतत् प्रतीयते यत् अथर्ववेदे आत्मोन्नतेः साधनानि बहूनि सन्ति बहवश्च मन्त्राः सन्ति। वेदाध्ययनं जीवनं पावयति। अध्यात्मदृष्ट्यैव वेदानां महत्त्वमंगीकृत्य भारतीयैः पाश्चात्यैश्च विपश्चिद्भिः वेदाध्ययने स्वजीवनं यापितम्। सर्वेऽपि विद्वत्तल्लजाः भारतीयाः पाश्चात्याश्च दार्शनिकाः आचारशिक्षणसमर्थाः शब्दशास्त्रमीमांसादक्षाः वैयाकरणाः अध्यात्मिकदृष्ट्या वेदानां परमप्रामाण्यं प्रतिपदमुद्घोषयन्ति। आध्यात्मिकविद्या लोकानां विविधाः

---

[५५]अथर्ववेदः - १६/१

[५६]भगवद्गीता - २/६५

[५७]अथर्ववेदः - ५/६/८

[५८]अथर्ववेदः - ५/६/८

[५९]अथर्ववेदः - १०/८/९

[६०]अथर्ववेदः - १०/८/९

समस्या निवारयति, जीवनोन्नतिं करोति सद्भावान् चोद्बोधयति। वेदाः अध्यात्मविद्यया दुःखत्रयविनाशपूर्वकब्रह्मतादात्म्यनुभूत्या समेषामपि सुधियां समाहृतिं समधिगच्छन्ति। अथर्ववेदे[६१] प्रोच्यते स एष एकवृदेक एव, यश्च तमेतं देवमेकवृतं वेद सः सर्वं ज्ञानं तपसं कीर्तिं यशसं ब्राह्मतेजसं स्थानं जलम् अन्नं भूतं भविष्यं श्रद्धां तेजसं स्वर्गं स्वधां च प्राप्नोति एवं सम्प्रार्थ्य विरम्यते यत् -

'पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।'[६२]

---

[६१]अथर्ववेदः - १३/४/२२-२३

[६२]अथर्ववेदः - १०/८/२९

वैदिक संस्कृति में परिवार की सङ्कल्पना

प्रो० योगेन्द्र भानु[1]

विश्व इतिहास में भारतीय संस्कृति को अपनी प्राचीनता एवं अक्षुण्णता के कारण अद्वितीय एवं अनुपम माना जाता है। संस्कृति के इस अक्षय रूप हेतु संस्कृति के विकास के उषः काल में ही वैदिक मनीषियों ने अनेकविध आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं सामाजिक प्रयोग किये तथा संस्कृति के आधारभूत सिद्धांत एवं संस्थाओं का निर्माण किया- यथा आस्तिकवाद, कर्मवाद, पुनर्जन्म, वर्ण, आश्रम, संस्कार, परिवार इत्यादि। इन संस्थाओं में मानव मात्र के लिए सर्वाधिक सहज, सुलभ एवं सरस संस्था परिवार संस्था है। इस संस्था ने न केवल कालक्रम के अनेक झंझावातों को झेल कर वैदिक संस्कृति को वर्तमान काल तक सुरक्षित रखकर मानव जीवन में जिजीविषा का एक ऐसा अभूतपूर्व सुधा रस घोल दिया जिससे मनुष्य में समस्त आधि, व्याधि, कष्ट, क्लेशों से लड़ने की अजस्र सामर्थ्य उत्पन्न हुई, जिससे मानवमात्र ने अपने संरक्षण, समुन्नयन एवं संवर्धन के अवसर प्राप्त किये और वह हजारों वर्षों के लम्बे कालखंड तक वैदिक ज्ञान विज्ञान को परम्पराओं के रूप में जीवित रखने

---

[1] **आचार्य संस्कृत विभाग, महारानीश्रीजया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर**

में सक्षम हुआ।

परि उपसर्ग पूर्वक वृञ् वरणे धातु से भावार्थक घञ् प्रत्ययान्त परिवार शब्द निष्पन्न होता है, जिसका शाब्दिक अर्थ है "कुछ सामाजिक सर्वमान्य आचार विचारों का वरण करने वाले रक्त संबंधियों का समूह" इस रूप में परिवार केवल व्यक्तियों का समूह नहीं अपितु सामाजिक मर्यादाओं का वरण करते हुए जिन रक्त संबंधियों ने एक साथ रहने का निश्चय किया है, उन व्रतियों के समूह का नाम परिवार है। परिवार संस्था के आविर्भाव का मूल हमें वैदिक सृष्टि प्रक्रिया में प्राप्त होता है, जहां आत्मतत्त्व अपने विस्तार के लिए दो तत्त्वों में विभाजित होता है, उनमें से एक तत्त्व पुरुष है और दूसरा तत्त्व स्त्री है। यही दोनों तत्त्व पति और पत्नी के रूप में व्याख्यात होते हैं। वैदिक संहिताओं में इस युग्म को द्यौ और पृथ्वी के रूप में परिभाषित किया गया है। वहां कहा गया है -

अमोऽहमस्मि सा त्वम्। सामाहमस्मि ऋक् त्वम्। द्यौरहं पृथिवी त्वम्॥ [२]

यह रूपक बड़ा अद्भुत है, जिस प्रकार आकाश में विचरण करने वाले मेघ वर्षा द्वारा पृथ्वी को गर्भ धारण कराते हैं और तब वृक्ष वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, ठीक इसी प्रकार परिवार में पति-पत्नी का स्वरूप है। यह दोनों ही सृष्टि के विस्तार के आधार हैं। इन दोनों के इस द्यौ और पृथ्वी स्वरूप के अभेद स्वीकृति को ही विवाह नाम दिया गया है। यहां पुरुष को साम और स्त्री को ऋक् कहा गया है। छान्दोग्य उपनिषद् में इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है "**ऋचि अध्यूढं साम गीयते**"[३] अर्थात् ऋग्वेद के मन्त्रों को आधार बनाकर ही सामगान

---

[२] अथर्व.१४.२.७१

[३] छान्दोग्य. उप.१.६.१

संवर्धित होता है। वैदिक मनीषी वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस युग्म को गोलक के रूप में व्याख्यायित किया है। वे कहते हैं कि इस परिवार वृत्त का व्यास स्त्री है और परिधि पुरुष है। यह स्त्री ही ऋक् है और पुरुष साम है। स्वाभाविक है व्यास से परिधि तीन गुना होती है। किन्तु उसका आधार व्यास ही होता है।[४]

वैदिक संस्कृति में परिवार की संकल्पना पूर्णतया आध्यात्मिक है, उसका मूल उद्देश्य कामोद्वेग के संयमन द्वारा सृष्टि का संवर्धन तथा प्रजा तन्तु के संवयन का संकल्प है। ऋग्वेद का ऋषि स्पष्ट घोषणा करता है कि हे अग्नि देव! मैं प्रजा के द्वारा अमृतत्त्व को प्राप्त करूं।[५] यह विश्व साहित्य की सर्वश्रेष्ठ उद्घोषणा है, जो एक गृहस्थ द्वारा की गई है, वैदिक परिवार के आधार में यही उद्घोषणा है। परिवार का मूल उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है, उसका द्वितीय उद्देश्य सृष्टि संवर्धन है। जिसका उपदेश आचार्य स्नातक को समावर्तन के समय करता है- "**प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः**"।[६] वस्तुतः वैदिक ऋषि परिवार के बिना मनुष्य को पूर्ण नहीं मानता है। पुरुष अथवा स्त्री अपने स्वरूप में आधे हैं, जब तक वह अपने विपरीत अर्ध भाग से नहीं मिल जाते हैं, तब तक उनकी अपूर्णता ही रहती है, अपने अर्ध भाग से मिलने के उपरान्त जब वह सन्तान उत्पत्ति करता है, तभी उसकी पूर्णता मानी जाती है।[७]

वैदिक साहित्य में परिवार के लिए कुल शब्द का प्रयोग प्राप्त होता

---

[४] हिंदू परिवार की मीमांसा की भूमिका पृष्ठ २४- २५

[५] ऋ. ५.४.१०

[६] तैत्तिरीय उप. १.११.१

[७] अर्धो ह वा एस आत्मनो यज्जाया तस्माद यावज्जायायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते असर्वो हि तावद्भवति ... तर्हि हि सर्वो भवति॥ शत. ब्रा. ५.२.१.१०

है, जो मूलत संश्लेषण पर आधारित है। कुल शब्द कुलसंश्लेषणे धातु से निर्मित है। निरुक्तकार ने कुल शब्द की व्युत्पति करते हुए कहा है "**कुलम् कृष्णातेः विकुषितं भवति**"[८] अर्थात् आत्मीय प्रेम ही कुल अथवा परिवार का आधार है। महाभारत में कहा गया है कि तप, दम, ब्रह्म, ज्ञान, यज्ञ, अनुदान, शुद्ध विवाह और सम्यक् आचार यह सात गुण सामान्य परिवार को महाकुल बना देते हैं। इस रूप में परिवार का मूल आधार त्याग एवं तप है।[९] अथर्ववेद के एक मन्त्र में परिवार के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि जिस परिवार में शुद्ध हृदय वाले स्नेही और पवित्र कर्म करने वाले पुण्य आत्मा, सुकृतों की कामना करते हुए, समस्त रोगों से मुक्त रहते हुए आनन्द से रहते हैं, ऐसे स्वर्ग तुल्य घर में हम स्वस्थ अङ्गों से अविकृत अकुटिल अपने माता-पिता को और अपने पुत्रों को देखें। मन्त्र में स्पष्ट है कि वैदिक मान्यता में परिवार का तात्पर्य माता-पिता और सन्तान से नहीं है अपितु न्यूनतम तीन पीढ़ियां मिलकर परिवार बनती हैं अर्थात् जिस घर में पितामह, पिता और पुत्र यह तीन निवास करते हैं, वह परिवार है।

अथर्ववेद में वर्णित परिवार के धारक तत्त्व-

अथर्ववेद संहिता में परिवार के आधारभूत तत्त्वों पर गम्भीरता से विचार किया गया है। वैदिक ऋषि का स्पष्ट मन्तव्य है कि समस्त विश्व एवं मानव मात्र के सामाजिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के विकास की आधारभूमि यह परिवार संस्था है तथा इस परिवार संस्था का आधार सहृदयता, सौमनस्यता एवं अद्वेषता आदि भाव हैं। यद्यपि अथर्ववेद में बहुल परिवार के धारक तत्त्वों का विचार किया गया है किन्तु

---

[८] निरुक्त ६.२२

[९] महा. उद्योग पर्व ३६/२१-२९

अथर्ववेद के तृतीय काण्ड के तीसवें सूक्त में तो मानो परिवार के चलाने के सूत्रों की मणिमाला प्रस्तुत की गई है। इस सूक्त के ऋषि अथर्वा हैं और देवता सांमनस्यम् है। अतएव इस सूक्त को सांमनस्यम् सूक्त भी कहते हैं। इस सूक्त में सात मन्त्र हैं, जिनमें से प्रथम मन्त्र में परिवार के आधारभूत सहृदयता, सौमनस्य एवं अद्वेषता का सन्देश दिया है तथा अग्रिम ६ मन्त्रों में परिवारजनों के व्यवहार पर प्रकाश डाला गया है।

सहृदयता, सौमनस्य एवं अद्वेषता-

अथर्ववेद का ऋषि सहृदयता, सौमनस्य एवं अद्वेषता को परिवार का मूल मानता है। ये मनोभाव जहां परिवार को बल देते हैं, वहीं व्यक्ति को आत्मिक शक्ति भी प्रदान करते हैं अत एव अथर्ववेद का ऋषि दम्पती को उपदेश देते हुए कहता है कि मैं तुम्हारे लिए सहृदयता, सौमनस्यता, अद्वेषता आदि की कामना करता हूँ। जिस प्रकार गाय अपने नवजात बछड़े को प्रेम करती है, उसी प्रकार आप भी दोनों एक दूसरे के प्रति आपस में प्रेम करने वाले होवें। परिवार का मूल सहृदयता ही है -

सहृदयं साम्मनस्यम्, अविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत, वत्सं जातमिवाघ्न्या॥[१०]

इसी भाव को एक अन्य मन्त्र में व्यक्त करते हुए ऋषि कहता है कि तुम्हारे मन एक हों, ऐश्वर्य के देव भग का जो श्रम जनित तेज है, उससे मैं तुम्हें एकता के भाव से युक्त करता हूँ -

संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं हृदः।
अथो भगस्य यच्छ्रान्तं, तेन संज्ञपयामि वः॥[११]

---

[१०] अथर्व ३.३०.१

[११] अथर्व ६.७४.२

इस मन्त्र में प्रयुक्त संज्ञपन शब्द सौमनस्य, एकीकरण एवं एकता के भाव को लिए हुए है। यहां ऋषि दम्पती के न केवल मन की एकता के प्रति सचेत है अपितु वह हृदय और श्रम में भी एकीभाव के प्रति आग्रही है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में यज्ञ करता हुआ यजमान अग्नि देव से प्रार्थना करता है कि हे गृहपति यज्ञीय अग्नि! सामान्य जनों में से केवल हमने ही आपको समिधाओं से प्रदीप्त किया है। हमारे पारिवारिक सम्बन्ध समन्वयुक्त हों, स्थिर हों। हमें अपने तीक्ष्ण तेज से तेजस्वी कीजिए -

वयमु त्वा गृहपते जनानाम्, अग्ने अकर्म समिधा बृहन्तम्।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि॥[१२]

पारिवारिक जनों का परस्पर व्यवहार-

साम्मनस्य सूक्त में अथर्वा ऋषि परिवार के सदस्यों के व्यवहार के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश देते हैं। वहां कहा गया है कि परिवार में पुत्र पिता का आज्ञाकारी होना चाहिए, वह सत्कर्म करने वाला हो और सदा ही माता के साथ अनुकूल हृदय वाला हो। पत्नी अपने पति के लिए सदा मधुर और सभी परस्पर शान्ति सुखदायक कल्याणकारी वाणी का प्रयोग करें -

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥[१३]

इसी प्रकार ऋषि पुनः आगे कहता है कि परिवार में भाई-भाई से तथा बहन-बहन से द्वेष न करें तथा भाई-बहन भी आपस में द्वेष न करें, प्रेम प्रीति से रहें तथा सहृदयता से मिलकर काम करने वाले, एक दूसरे की अनुकूलता में रहकर एक उद्देश्य वाले होकर परस्पर कल्याणकारी

---

[१२] ऋग् ६.१५.१९

[१३] अथर्व० ३.३०.२

और सुखदायिनी वाणी बोलें-

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥[१४]

ऋषि पुनः अगले मन्त्र में कहता है कि जिस वेद ज्ञान को प्राप्त करके विद्वान् एक दूसरे का विरोध नहीं करते, परस्पर द्वेष भी नहीं करते हैं, उस वेद ज्ञान को तुम मनुष्यों के लिए मैं तुम्हारे घरों में प्रदान करता हूँ। उस वेद ज्ञान का अनुसरण करते हुए आप लोग प्रेमपूर्वक रहें-

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥[१५]

अग्रिम मन्त्र में पुनः कहा गया है कि हे मनुष्य! उन्नति का आधार एकता है, तुम लोग योग्यता में आगे बढ़ते हुए समान चित्त वाले और एक ही उद्देश्य वाली धुरी से जुड़े हुए श्रेष्ठ कर्मों को मिलकर सम्पन्न करते हुए संगठित रहो, अलग-अलग मत होओ। एक दूसरे के लिए सुन्दर वाणी बोलते हुए चलो, साथ-साथ कार्य करने वाले तुम लोगों को मैं एक मन और चित्त वाले होने का उपदेश करता हूँ-

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥[१६]

सूक्त के छठे मन्त्र में ऋषि परिवार के मनोवैज्ञानिक पक्ष को उजागर करते हुए कहता है कि आपका पानी पीने का स्थान एक हो, आपका भोजन करने का स्थान एक हो, आप साथ-साथ प्रेम से भोजन करें। तुम लोग एक बन्धन में अर्थात् समान धर्म में बंधकर रहो, एतदर्थ

---

[१४] अथर्व० ३.३०.३

[१५] अथर्व० ३.३०.४

[१६] अथर्व० ३.३०.५

मैं तुम्हें शिक्षा देता हूँ। साथ-साथ अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने वाले तुम लोग जैसे एक चक्र के केन्द्र के चारों ओर अरे लगे रहते हैं, वैसे ही स्व स्व स्थान ज्ञानरूप परमेश्वर विद्वान् गुरु आचार्य और यज्ञ की पवित्र अग्नि की उपासना, सङ्गति और सानिध्य में रहकर सेवा किया करो-

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥[१७]

मन्त्र में वर्णित सङ्गत और पङ्गत का प्रभाव हमने भक्तिकालीन सम्प्रदायों में देखा है। इससे एक ही भाव का विकास होता है। ऋषि ने इसी भाव को मन्त्र में प्रकट किया है। सूक्त के अन्तिम मन्त्र में ऋषि अथर्वा निष्कर्ष रूप में कहते हैं कि मैं तुम्हें विभिन्न अविरोधी कार्यों को मिलकर सम्पन्न करने वाले और समान चित्त वाले होने का उपदेश करता हूँ। साथ ही तुमको समान रूप से पेट भर भोजन करने वाले तथा एक दूसरे के प्रति स्नेह प्रेम से रहने वाले और मेरे दिए हुए पदार्थ का समान रूप से उपभोग करने वाले होने की प्रेरणा और परामर्श करता हूँ। अमृत की रक्षा करने वाले देवों के समान तुम्हारा चित्त भी प्रातःकाल एवं सायंकाल अर्थात् दिनभर सौमनस्य युक्त रहे-

सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देशा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रतः सौमनसो वो अस्तु ॥[१८]

मनभेद का कारण एवं उसके निवारण का उपाय -

ऋषि अथर्वा ने परिवार संस्था के संरक्षण एवं संवर्धन पर बड़ी गहनता से विचार किया है। षष्ठ काण्ड के ४२वें सूक्त में भृग्वङ्गिरा ऋषि मन्यु के निवारण पर विचार करते हैं। वस्तुत वर्तमान में परिवार में होने

---

[१७] अथर्व० ३.३०.६

[१८] अथर्व. ३.३०.७

वाले विघटन के कारण बहुत छोटे-छोटे होते हैं, जिनका मूल कारण मन्यु है। जिसे हम स्वाभिमान का छोटा रूप कह सकते हैं। यह स्वाभिमान जब अहङ्कार से मिल जाता है तो मन्यु का रूप धारण कर लेता है। उक्त सूक्त में पति-पत्नी के मन्यु निवारण के सम्बन्ध में कहा गया है। मन्त्र का प्रतिपाद्य पति पत्नी के संवाद के रूप में है। पत्नी कहती है कि हे पतिदेव! जिस प्रकार धनुष से चढ़ी हुई डोर को उतार दिया जाता है वैसे ही मैं तेरे हृदय से मन्यु को उतार देती हूँ, पृथक् कर देती हूँ, जिससे हम दोनों एक चित्त होकर दो मित्रों की तरह रहें, परस्पर सुसङ्गत होकर मित्र हो जाएं-

अव ज्यामिव धन्वनो मन्युं तनोमि ते हृदः।
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै॥[१९]

इसी प्रकार पुनः अगले मन्त्र में कहा गया है- दो मित्रों के समान हम दोनों मिलकर रहें और मैं तेरे मन्यु को उतार देती हूँ, तेरे मन्यु को मैं ऐसे फेंक देती हूँ जैसे पत्थर के नीचे किसी वस्तु को फेंक दिया जाता है-

सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते।
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरुः॥[२०]

पुनः अगले मन्त्र में कहा गया है कि मैं तेरे मन्यु को पैर की एड़ी द्वारा और पैर के अगले भाग द्वारा कुचल देती हूँ, जिससे कि अपने आपको वश में न रखता हुआ तू कुछ न कह सके और मेरे चित्त के अनुकूल होकर आ जाए-

अभि तिष्ठामि ते मन्युं पार्ष्ण्या प्रपदेन च।
यथावशो न वादिषो मम चित्तमुपायसि॥[२१]

---

[१९] अथर्व. ६.४२.१

[२०] अथर्व. ६.४२.२

वस्तुतः यह मन्यु ही पारिवारिक विघटन का कारण है। इसमें यदि एक व्यक्ति दूसरे के मन्यु को स्वीकार कर लेता है और उसे दूर करने का प्रयास करता है तो निश्चित रूप से इस मन्यु का उपशमन होता है और परिवार के विघटन की समस्या समाप्त हो जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अथर्ववेद का ऋषि परिवार के सुदृढ़ीकरण के प्रति अत्यन्त सचेत है। यदि परिवार में सभी लोग अपने कर्तव्य का पालन करते हुए साम्मनस्य पूर्ण व्यवहार करें, अद्वेषपूर्वक रहें और परस्पर सम्मान करें तो निश्चित रूप से परिवार संस्था के समक्ष वर्तमान में उपस्थित चुनौती का हम वेद के आलोक में समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

---

[२१] अथर्व. ६.४२.३

अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति का स्वरूप

डॉ० विनोद कुमार[१]

सृष्टि के आदि ग्रन्थ वेद प्राचीन वैदिक संस्कृति-सभ्यता, धर्म और ज्ञानोदय के आदि स्रोत हैं। ये प्रत्येक विद्याओं के उद्गम स्थल हैं। ऋषि दयानन्द आर्य समाज के तृतीय नियम में कहते हैं **'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'...।** षड्दर्शन विज्ञान यहीं से प्रारम्भ हुआ। ज्योतिष, साहित्य, व्याकरण, छन्द एवं आयुर्वेद आदि विद्याओं का साहित्य आज भी इनकी उपजीव्यता को आधार बनाकर लिखा जाता है। ये ज्ञान- विज्ञान के कोश हैं। आयुर्विद्या का आदि स्रोत इन्हीं से प्रस्फुटित हुआ। महर्षि भारद्वाज, अत्रि, वशिष्ठ, धन्वन्तरि आदि चिकित्सा-विज्ञानवेत्ताओं ने इन्हीं को उपजीव्य बनाकर बड़ी-बड़ी संहिताओं की रचना की। महर्षि आत्रेय, अग्निवेश, धन्वन्तरि, काश्यप आदि प्रतिपादित संहिताओं में जो प्रति संस्कृत संस्करण उपलब्ध हैं, उनमें यही उल्लेख है कि यह चिकित्सा विज्ञान अथर्ववेद[२] की उपलब्धि है।

चिकित्सा विज्ञान का नाम वेद अर्थात आयुर्वेद है। किन्तु यह शब्द

---

[१] **सहाचार्य, संस्कृत-पालि-प्राकृत-प्राच्यभाषाविभाग, इलाहाबाद वि.वि., प्रयागराज**

[२] चरकसंहिता सूत्रस्थान ३०/२१

इसके साहित्य में कहीं मिलता नहीं है। प्राचीन वैदिक साहित्य में विद्या शब्द दिखाई देता है, यथा– आयुर्विद्या, महाविद्या, प्राणविद्या, ब्रह्मविद्या इत्यादि। किन्तु महर्षि धन्वन्तरि ने सुश्रुत को उपदेश देते समय प्रथम अध्याय में वेद शब्द लिखा है, जिसका तात्पर्य आयुर्वेद शब्द में गृहीत है '**अथातो वेदोत्पत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः। यथोवाच भगवान् धन्वन्तरिः**'[३]। अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति का अध्ययन एवं विवेचन करने के उपरान्त ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में मुख्य रूप से चिकित्सा के चार प्रकार विद्यमान थे - आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी और मनुष्यजा चिकित्सा–

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवी मनुष्यजा उत।
औषधय प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसिःऽथो या काश्च वीरुधः॥[४]

आथर्वणी विधि शान्ति विधि का नाम है। अथर्वन् शब्द का तात्पर्य वेद के माङ्गलिक कार्यों के लिए माङ्गलिक विधानों से है। गोपथ ब्राह्मण में '**ऋचि यजूँषि सामनि शान्तोऽथ घोरे**'[५] कहकर आथर्वणी विधि का शान्तिपूर्ण कार्यों या उपचारों के लिए सङ्केत किया है। यहाँ अथर्वन् शान्त के लिए 'ओ३म्' और आङ्गिरस् घोर के लिए 'जनत्' इस व्याहृति का प्रयोग किया जाता है। यहीं अथर्ववेदीय याज्ञिक अनुष्ठानों में वनस्पतियों के भी दो वर्ग बतलाए हैं, जिनमें आथर्वणी शान्त तथा आङ्गिरसी विनाशक या संहारकारी अभिचार में प्रयोग होने वाली घोर कही गई हैं[६]। वाणी और मन की शुद्धि तथा प्राण (ब्रह्मचर्य और प्राणायाम) के संयम के

---

[३] सुश्रुतसंहिता, आरम्भे

[४] अथर्ववेद, कां. ११, सू. ४, मन्त्र १६

[५] गोपथब्राह्मण १/२/२१ एवं १/५/१०

[६] वैतान सूत्र २/१० एवं गोपथब्राह्मण १/२/१८

साथ किया गया जप, तप, दान, तीर्थयात्रा, उपस्थान, अनुष्ठान, सङ्कल्प, योग तथा यज्ञ सभी शान्ति कर्म हैं, इनसे रोग-व्याधि रहित दीर्घ जीवन प्राप्त होता है। यही आथर्वणी चिकित्सा पद्धति है। गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि ऋतु सन्धिकाल में व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। उनके निराकरणार्थ भैषज्यरूप ऋतु सन्धि यज्ञ किए जाते हैं- '**भैषज्य यज्ञ वा एते तस्माद्दतुसन्धिषु व्याधिर्जायते**'[७]। इसी प्रकार यजुर्वेद में ऋषि प्रार्थना करते हैं कि मेरी आयु यज्ञ से सम्वर्धित हो, मेरा प्राण यज्ञरूप सत्कर्म के लिए समर्पित हो '**आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पताम्**'...[८]। देश, काल और कर्म के ज्ञाता ऋषि सदृश तप द्वारा किए गए योग, यज्ञ, सत्कर्मों के द्वारा देव प्रसन्न होकर नीरोगता, दीर्घायु प्रदान करते हैं।

आङ्गिरसी चिकित्सा –

आङ्गिरस शब्द भयङ्कर और घोर अर्थ की प्रतीति कराता है। कौशिकसूत्र में आङ्गिरस शब्द अभिचारिक या घोर इस अर्थ में प्रयुक्त है। आश्वलायन श्रौत सूत्र में वर्णित है कि भेषजम् (शान्त) का पाठ आथर्वण वेद से और घोरम् (अभिचारिक) का पाठ आङ्गिरस् वेद से करना चाहिए। आचार्य पं. केशवदेव शास्त्री जी का इस विषय में मानना है कि प्राणियों के पार्थिव शरीर के अङ्गों, अवयवों और इन्द्रियों में एक विचित्र दैवी रस रहता है उसी से उसका जीवन सञ्चार होता है। उसके द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, उसे आङ्गिरसी चिकित्सा कहते हैं। इसके लिए किसी भी औषधि या वनस्पति आदि की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं पड़ती। मानसिक चित्त एकाग्रता के साथ रुग्ण अवयव को सम्बोधित करते हुए! हस्त, मन, वाणी आन्तरिक सङ्कल्प, दृष्टिपात आदि द्वारा

---

[७] गोपथब्राह्मण उत्तरार्ध १/१९

[८] यजुर्वेद ९/२१

शक्ति सम्पात किया जाता है[९]। अथर्ववेद में कहा है -

अयम्मे हस्तो भगवानयम्मे भगवत्तरः।
अयम्मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥
हस्ताभ्यां दश शाखाभ्यां जिह्वा वाचा पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभिमृशामसि॥[१०]

इस आङ्गिरसी चिकित्सा का दूसरा पक्ष अभिचारिक क्रियाओं अर्थात् यातु या घातक अभिचार को सूचित करता है। जैसे कि 'आथर्वणी' शान्त विधि में प्रातः से मध्याह्न पर्यन्त वृक्षों के उत्तर या पूर्व दिशाओं की शान्त वृक्ष की टहनियाँ और उत्तर या पूर्व दिशा के ही जल तथा पीली मिट्टी और यज्ञोत्पादित शान्त जातवेदसाग्नि ली जाती है। जबकि इसके विपरीत आङ्गिरसी घोर (अभिचार) विधि में मध्याह्नोत्तर से सायं पर्यन्त की दक्षिण या पश्चिम दिशाओं की टहनियाँ और जल तथा वाल्मीकि की वेदी की मिट्टी दक्षिणाग्नि अर्थात् सांग्रामिक, श्मशान की चाण्डालाग्नि ली जाती हैं। दोनों विधियों में समिधा, सामग्री, आज्य आदि का भी भेद है। आङ्गिरसी विधि में अश्वत्थ की स्वयं टूटी हुई या ओलों से गिरी, कण्टकीय वृक्षों की, गिद्ध आदि के घौंसले की, शमी, शाल्मलि, विल्व वृक्ष की समिधा ली जाती हैं। आज्य में घृत के स्थान पर सरसों का तेल तथा सामग्री में घोर या अभिचार कर्म के सम्पादक बहुधान्यों के सत्तू, नमक, सरसों, काली मिर्च आदि ली जाती हैं। इस प्रकार की घोर आङ्गिरसी विधि से अनिष्ट, अशुभ एवं व्याधियाँ दूर हो जाती हैं। जैसा कि कहा गया है-

---

[९] कर्मजभवव्याधि दैवी चिकित्सा, पृ.४३

[१०] अथर्ववेद,४/१३/६-७

अथर्वा सृजते घोरमशुभं शमयेत्तथा।
अथर्वा रक्षते यज्ञं यज्ञस्य पतिरंगिराः।
दिवान्तरिक्षभौमानामुत्पातानामनेकधा।
शमयति ब्रह्म- वेदज्ञः तस्माद्दक्षिणतो भृगुः[११]**।**

आङ्गिरसी चिकित्सा के उपरिवर्णित दोनों पक्षों में मानसिक शक्ति, वाणी के तप आदि का अत्यधिक महत्त्व है। व्यक्ति एकाग्र एवं अन्तर्मुखी मन के द्वारा, अनेक व्याधियों को आत्मशक्ति या इच्छाशक्ति से ही दूर कर लेता है और निर्भय होकर मन ही मन यह भावना रखता है कि तू भयभीत न हो, तू मरने वाला नहीं है '**न विभेः न मरिष्यसि**'।

इसी प्रकार सत्यभाषण, मौन, जप, उपस्थान आदि से वाणी अप्रतिहत होती है। व्यक्ति जो कहता है, वह अवश्य होकर रहता है। तभी आशीर्वाद या शाप सत्य होते हैं। ऐसा सामर्थ्य ऋषियों की वाणी में सुना जाता है कि उनके कथनमात्र से आधि-व्याधियाँ दूर हो जाती हैं, समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं, कार्य सफल हो जाते हैं। महाकवि भवभूति इसी आशय से कहते हैं–

'**ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति**'[१२]...।

इस प्रकार आङ्गिरसी विधि में मानसिक शक्ति जप, तप, अनुष्ठानादि से अर्जित शक्ति द्वारा उपचार किया जाता है जिसमें कर्मकाण्ड या क्रियाएँ भयङ्कर और घोर दृष्टिगोचर होती हैं।

मानुषी चिकित्सा –

मानुषी चिकित्सा से तात्पर्य मनुष्यों द्वारा बनाये गये रस, कषायचूर्ण, अवलेह, भस्मकल्प, गुटिका (वटी), अञ्जन, इन्जेक्शन,

---

[११] वैतानसूत्र

[१२] उत्तररामचरितम् प्रथम अङ्क

चीड़फाड़ के यन्त्र, मरहम, पट्टी, तेल आदि द्वारा की जाने वाली चिकित्सा है। आयुर्वैदिक, ऐलोपैथिक, यूनानी, चीनी, होम्योपैथिक आदि की उपचार सामग्री व क्रियाएँ इसी चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं। भारद्वाज, अत्रि, वशिष्ठ आदि ऋषियों द्वारा उपदिष्ट वर्तमान संहिताओं में वर्णित चिकित्साविज्ञान मानुषी या मनुष्यजा चिकित्सा है। यह परिवर्धित, परिमार्जित, परिबृंहित विज्ञान है, जिसे आयुर्वेद चिकित्सा कहते हैं। इसमें स्वरस, चूर्ण, वटी, वटक, घृत, तेल, रस और रसायन सबका औषधि के रूप में समावेश होता है। वास्तव में यह चिकित्सा अष्टाङ्ग आयुर्वेद का विकसित रूप है, जिसमें शल्यतंत्र, शालाक्यतन्त्र, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य या बालतन्त्र, अङ्गदतन्त्र, रसायनतन्त्र, वृष-चिकित्सा या वाजीकरणतन्त्र समाहित हैं। इस प्रकार चाहे रोग कृमिजन्य हों अथवा वात, कफ, पित्त तीनों धातुओं के विकृत होने से उत्पन्न हुए हों, सभी दैहिक रोगों का उपचार आयुर्वेद द्वारा किया जाता था, जो कि मानुषी चिकित्सा के अन्तर्गत आता है। उल्लेखनीय है कि इस चिकित्सा पद्धति को भी दो वर्गों में विभक्त किया जाता है - प्रथम मानुषी एवं दूसरी आसुरी। जिस चिकित्सा पद्धति में बिना शल्यक्रिया किए केवल गोली, चूर्ण, वटी, रस, अवलेह आदि देकर रोग का उपचार कर दिया जाता है, वह मानुषी चिकित्सा कहलाती है, जबकि जिसमें शल्यक्रिया द्वारा रोगों का उपचार किया जाए, वह आसुरी चिकित्सा कहलाती है[१३]।

दैवी चिकित्सा -

डा. हीरालाल विश्वकर्मा के अनुसार देव भिषजों की चिकित्सा का नाम दैवी चिकित्सा है। दैव भिषक् ब्रह्मा, प्रजापति, अग्नि, वरुण, रुद्र, इन्द्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, सोम आदि द्वारा की गई चिकित्सा दैवी

[१३] कर्मजभवव्याधि दैवी चिकित्सा, भूमिका, पृ. ५

चिकित्सा है[१४]। इनसे सम्बन्धित मन्त्र वेदों में अनेक स्थानों पर प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद में प्राण और अपान को देवताओं का वैद्य अश्विनी कुमार कहा गया है और उनसे प्रार्थना की गई है कि अश्विनी कुमारों! मृत्यु से हमें दूर करो, तुम देवों के भिषक् हो -

अमुत्रभूयादधियद्यमध्यबृहस्पतेरभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विनामृत्युमस्मद् देवानामग्रे भिषजा शचीभिः॥[१५]

देवों को स्मरण कर रोगी को दी गई औषधि उपचार को भी दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जैसा कि पं. केशवदेव शास्त्री का मानना है कि 'चूंकि औषधि और वनस्पतियों में भी ब्रह्म (जीवन) है अतः जो औषधि पूजा और प्रार्थना करके लाई जाती है और जिन्हें अभिमन्त्रित कर रुग्ण व्यक्ति को दिया जाता है, वे निश्चय ही अधिक प्रभावी होती हैं अपेक्षाकृत जिन्हें बिना प्रार्थना या बिना अभिमन्त्रित किए प्रयुक्त किया जाता है[१६]। अथर्ववेद में अभिमन्त्रित औषधियों के प्रभाव के विषय में कहा है- '**स्तनथः सिंहस्य इव आभृताभ्यः सं विजन्ते**'[१७]। अतः डा० हीरालाल जी सब प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा व व्रत, उपवास, यज्ञ, हवन आदि को दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत मानते हैं। जलचिकित्सा (Hydropathy), सौर चिकित्सा या सूर्यरश्मि चिकित्सा, वायुचिकित्सा (Aeropathy), विद्युत् चिकित्सा (Electropathy), वर्णचिकित्सा (Tingopathy) आदि सभी प्राकृतिक चिकित्सा की विधा भी दैवी चिकित्सा के व्यापक एवं विस्तृत स्वरूप के अन्तर्गत आती हैं।

---

[१४] अथर्व चिकित्सा विज्ञान, भूमिका, कृष्णदास अकादमी वाराणसी सं. १९८४

[१५] अथर्ववेद ७/५३/१

[१६] कर्मजभवव्याधि दैवी चिकित्सा पृ.४०

[१७] अथर्ववेद ८/७/१५

दैवी चिकित्सा में मुख्यरूप से दैवीय तत्त्वों या चार महाभूतों के द्वारा चिकित्सा की जाती है। महाभूतों द्वारा चिकित्सा अथवा उनका औषधि के रूप में वर्णन वेदों में स्पष्टतया उपलब्ध होता है। जैसा कि ऋग्वेद में कहा है जल ही संसार की सर्वश्रेष्ठ भेषज है '**आपश्च विश्वभेषजी**'[१८] पवन स्रोत, जल, नद-नदी, आकाश जल सभी विश्वभेषज हैं '**अप्सु मे सोमोऽब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा**[१९]। अथर्ववेद में १० प्रकार के जल वर्णित हैं, जो भेषजरूप होते हैं - १. जल २. (दिव्यः) दैवी ३. (आपः) आकाशी ४. (वार्षिकी आप:) वर्षा का जल ५. (सिन्धु:) समुद्री जल ६. (नद्य:) नद नदी का जल ७. (अनूप्या: आप:) मरुभूमि के जल ८. (धन्वन्या: आप:) रेतीली भूमि के जल ९. (स्रोवसि) बालुकामय स्रोतों के जल १०. (खनित्रिमा: आप:) कुएं, बावड़ी नलों के जल।

पृथिवी तत्त्व अर्थात् मृत्तिका भी दैवी चिकित्सा का अङ्ग है। जिसका प्राय: प्रयोग विविध रोगों के शमन में लेपादि के रूप में किया जाता है। अथर्ववेद के पृथिवीसूक्त में इस आशय की अनेक प्रार्थनाएँ उपलब्ध होती हैं '**उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवी प्रसूता**'[२०] अर्थात् पार्थिव रूप से उत्पन्न हमारे रोग - राजयक्ष्मादि सभी व्याधियाँ तेरी मिट्टी के द्वारा हम शमन करते हैं।

इसी प्रकार वायु को भी दैवी चिकित्सा का एक अङ्ग माना जाता है। पवित्र वायु ही नीरोगता, सञ्जीवन तथा दीर्घायुष्य का मूल है। अथर्ववेद में वायु को ही प्राण कहा गया है '**सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणः**[२१]।

---

[१८] ऋग्वेद १/२३/२०

[१९] वही १०/९/६

[२०] अथर्ववेद १२/१/६२

[२१] वही ५/९/७

वायु ही प्राण होकर नासिका में प्रविष्ट हुआ है- '**वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्** '[२२]। प्राणायाम आदि प्राण विद्याओं से अनेक असाध्य रोगों का उपचार किया जाता है। इसलिए प्राण अर्थात् वायु को विश्व का भेषज भी कहा गया है- '**प्राणो विश्वस्य भेषजी**'।

दैवी चिकित्सा का ही एक रूप सूर्यचिकित्सा अथवा अग्निचिकित्सा भी है। यदि शरीर में अग्नि न हो तो आपके द्वारा किया गया भोजन पचेगा नहीं और शरीर में अन्य धातुएँ भी नहीं बनेगी। अत: उदरस्थ जठराग्नि को प्रदीप्त रखना अथवा अग्नि के मूल स्रोत सूर्य द्वारा विभिन्न प्रकार के औषधीय लाभ प्राप्त करना दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत आते हैं। विटामिन डी की प्राप्ति द्वारा अनेक रोगों का निवारण, वाष्पस्नान, सूर्योदय के साथ जगने एवं सूर्य रहते भोजन करने से स्वास्थ्य की प्राप्ति आदि अनेक उदाहरण सूर्यचिकित्सा से सम्बन्ध रखते हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अथर्ववेदीय चिकित्सा पद्धति मुख्यरूप से चार प्रकार की है– आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी और मनुष्यजा। आथर्वणी में जहाँ शान्तिपूर्ण जप, तप, मन्त्र, यज्ञ-अनुष्ठान प्राणायाम आदि द्वारा रोगी के रोग (आधि-व्याधियाँ) का उपचार किया जाता है, वहीं आङ्गिरसी में घोर या भयङ्कर तान्त्रिक क्रियाकलापों द्वारा रोगी का उपचार किया जाता है। क्योंकि मनुष्य की कुछ व्याधियाँ मिथ्याहार-व्यवहार-जनित होती हैं, जो मनुष्य के स्थूल शरीर के स्वयं के ही प्रमाद से उत्पन्न होती हैं। किन्तु कुछ व्याधियाँ कर्मज या पापज होती हैं, जो कि जन्म-जन्मान्तरीय पाप, शाप अथवा माता पिता द्वारा प्राप्त आनुवांशिक रोगों या पापों के बीज के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं। ये व्याधियाँ सूक्ष्म और प्राण शरीर को ही सर्वप्रथम प्रभावित करती हैं अतः

[२२] ऐतरेय उपनिषद् १/२/४

इन्हें मानसिक व्याधियाँ भी कहा जा सकता है। आथर्वणी एवं आङ्गिरसी उपचार विधि से मुख्यतया इन कर्मज व्याधियों का ही उपचार सम्भव है। अतः स्थूलदेह की व्याधियों के उपचार के लिए दैवी चिकित्सा एवं मनुष्यजा चिकित्सा का विधान है। दैवी चिकित्सा आज प्राकृतिक के रूप में विकसित है जबकि मनुष्यजा चिकित्सा मानुषी (दवा गोली के द्वारा) एवं आसुरी (शल्यक्रिया) के भेद से विद्यमान है। मनुष्यजा चिकित्सा का विस्तृत वर्णन अष्टाङ्गयुक्त आयुर्वेद में उपलब्ध है जो कि सुश्रुत सूत्रस्थान के अनुसार भेषजप्रधान वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग माना गया है '**इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य**'।

अथर्ववेद में राष्ट्र-चिन्तन : सामर्पण-भाष्य के सन्दर्भ में

डा० जगमोहन[१]

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी ने अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के १२ सूक्तों का ही भाष्य किया है। यह भाष्य कलेवर में अत्यल्प है, किन्तु इन १२ सूक्तों के भाष्य में ही स्वामी जी ने ऋषियों के व्यापक दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर दिया है। उन्होंने गागर में सागर भर दिया है। यह वेदभाष्य अपने परवर्ती भाष्यकारों के लिए सदैव पथ-प्रदर्शक दीपक के रूप में कार्य करता रहेगा।

स्वामी जी ने अपने अथर्ववेद के भाष्य में मुख्य विषय के रूप में **आयुर्वेद परक** अर्थ को ही प्रस्तुत किया है, परन्तु साथ ही साथ राष्ट्र-परक अर्थ को भी विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।[२]

प्रथम मन्त्र का राष्ट्र-परक अर्थ करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि

[१] **हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय**

[२]अथर्ववेदभाष्यम्, का. १, सू.१, म.१

स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेनाएँ राज्य के सात अङ्ग होते हैं। इस सप्ताङ्ग राज्य की उन्नति शत्रुबध अप्राप्त की प्राप्ति और प्राप्त का संरक्षण इन तीन प्रकार के प्रयत्नों से होती है।

इस प्रकार तीन और सात अङ्गों से युक्त राजनीति के बल की प्रार्थना इस मन्त्र में की गई है।

विद्मा शरस्य पितरं मित्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।[३]

इस मन्त्र में आए हुए **मित्र** शब्द का राष्ट्र-परक अर्थ प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि राष्ट्र में मित्र का अर्थ होता है कि राजसभा में राष्ट्र के लिए उपयोगी नियम बनाने वाला राज-पुरुष। सम्पूर्ण मन्त्र का भावार्थ इस प्रकार करते हैं- दुर्व्यवस्था के नाश करने वाले राज्यनियम के उत्पादक सैकड़ों प्रकार के सुखों की वर्षा करने वाले मित्र नामक राजपुरुष को हम जानते हैं। मित्र द्वारा उत्पादित उस राज्य नियम से तुम्हारे राष्ट्ररूपी शरीर के लिए कल्याण करता हूं।

विद्मा शरस्य पितरं वरुणं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।[४]

स्वामी जी ने मन्त्र में आए हुए **वरुण शब्द** का अर्थ राष्ट्र-परक करते हुए पुलिस विभाग का अध्यक्ष किया है। वरुण नामक राजाधिकारी अपने प्रयुक्त दण्ड से राष्ट्ररूपी शरीर के लिए मङ्गल करता है।

मित्र और वरुण का आपस में गहरा सम्बन्ध है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों राष्ट्र की उन्नति, समृद्धि एवं शान्ति के लिए कार्य करते हैं। मित्र राष्ट्र के लिए कल्याणकारी नियमों का निर्माण करता है तो वरुण

---

[३]अथर्ववेदभाष्यम्, का. १, सू.२, म.२

[४]अथर्ववेदभाष्यम्, का. १, सू.३, म.३

मित्र के बनाए नियमों को भङ्ग करने पर भङ्गकर्ता को दण्डित करके राष्ट्र का कल्याण करता है।

विद्मा शरस्य पितरं चन्द्रं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।[५]

स्वामी जी **चन्द्र** का राष्ट्र-परक अर्थ करते हुए कहते हैं, वह राजपुरुष जो अपने अपने कर्म व्यापारों से परिश्रान्त सज्जनों की थकावट दूर करने के लिए अनेक प्रकार के गीत, नृत्य, वाद्य, नाटक, चित्रकला आदि आमोद-प्रमोद के साधनों द्वारा ऐहिक और आमुष्मिक दोनों प्रकार के आनन्दवर्धन की सामग्री जुटाता है, अर्थात् जो ललित-कला का अध्यक्ष होता है, वह अपने ललित-कला के ज्ञान से राष्ट्र के लिए मङ्गल करता है।

विद्मा शरस्य पितरं सूर्यं शतवृष्ण्यम्।
तेना ते तन्वे३ शं करं पृथिव्यां ते निषेचनं बहिष्टे अस्तु बालिति।[६]

स्वामी जी **सूर्य** का राष्ट्र-परक अर्थ करते हुए कहते हैं कि राष्ट्र में विद्या-प्रचार के कार्य में नियुक्त राज्याधिकारी सूर्य है। राष्ट्र में ज्ञान का प्रकाश करने वाले राज्याधिकारी उस ज्ञान से राष्ट्र का मङ्गल करते हैं।

आपो हि ष्ठा मयो भुवस्ताः न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे॥[७]

मन्त्र में आगत आपः शब्द का प्रजा अर्थ करते हुए वे मन्त्र का राष्ट्र-परक अर्थ करते हुए लिखते हैं कि राजा अपनी प्रजाओं से प्रार्थना कर रहा है कि मुझे तुम बलिष्ठ बनाओ और रमणीय रीति से कार्य करने में समर्थ बनाओ।

---

[५]अथर्ववेदभाष्यम् , का.१, सू.३, म.४

[६]अथर्ववेदभाष्यम्, का.१, सू.३, म.५

[७]अथर्ववेदभाष्यम्, का.१, सू.५, म.१ स

पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज ने इन मन्त्रों में आये हुए मित्र, वरुण, चन्द्र और सूर्य का जो राष्ट्रपरक अर्थ किया गया है, वह कल्पना मात्र नहीं है। अपितु उन्होंने अपनी ऊह-शक्ति से शास्त्रीय आधारों को भी मन्त्र का भाष्य करते हुए स्पष्ट किया है। वे उन सन्दर्भों का भी उल्लेख करते हैं, जिनके आधार पर उन्होंने इस प्रकार के अर्थ प्रस्तुत किए हैं। उदाहरण के लिए सूर्य के राष्ट्र-परक अर्थ के विषय में स्वामी जी कहते हैं कि ऋग्वेद ६.५०.२ में कहा गया है कि हे सूर्य! तू निष्पाप ज्ञान से युक्त और सत्य पर चलने वाले बना। ऋग्वेद १०.३७.५ में कहा गया है कि सूर्य हमारे व्रतों की रक्षा करता है। इसी सूक्त में सूर्य को हर एक चीज को समझने वाला चतुर पुरुष कहा गया है। सूर्य के लिए **दृशे विश्वाय** कहा गया है। सूर्य सब प्रकार का ज्ञान कराता है। भौतिक सूर्य केवल एक प्रकार का चाक्षुष ज्ञान कराता है। इस प्रकार सूर्य का ज्ञान से स्पष्ट सम्बन्ध है। सूर्य जैसे अन्धकार को नष्ट करता है ऐसे ही राष्ट्र में ज्ञान का प्रसार करने वाला राज्याधिकारी अविद्या अन्धकार को नष्ट करता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी जी की दृष्टि में मन्त्रों का राष्ट्र-परक अर्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टि से भी वेदार्थ का चिन्तन कर हमें अपने राष्ट्र को परम वैभवशाली बनाने में अपना योगदान करना चाहिए।

अथर्ववेद सामर्पण भाष्य की अद्वितीयता

डॉ० सत्यकेतु[१]

अथर्ववेद ब्रह्म-वेद है। ब्रह्म अर्थात ज्ञान का वेद है। अथर्ववेद को लेकर लोक में अनेक प्रकार के भ्रम विद्यमान हैं। आधुनिक प्रतियोगी परीक्षाओं की सामान्य ज्ञान की पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में तो अवैदिक क्रियाओं को ही वेदोक्त बताया गया है। अवैदिक वेद बाह्य प्रक्रियाओं की भ्रान्ति षड्यन्त्रपूर्वक कुछ भारतीय भाष्यकारों एवं विशेषतः तथाकथित पाश्चात्य विद्वानों के अल्पश्रुत भाष्यों का दुष्परिणाम है। जो व्यक्ति कभी भारत की भूमि पर आया ही नहीं, जिसने कभी इस वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति का भौतिक प्रत्यक्ष नहीं किया, उनके द्वारा इस प्रकार का उल्लेख फिर भी क्षम्य है किन्तु ऐसे भाष्यकार जिन्होंने इसी पुण्यभूमि पर रहकर अपना जीवन जिया और इसी सभ्यता तथा संस्कृति का रसपान करके योग्यता अर्जित की, उनके द्वारा भी इस प्रकार की अवैदिक प्रक्रियाओं का वेदों में उल्लेख सर्वथा अक्षम्य अपराध है।

अथर्ववेद के विषय में पहली भ्रान्ति तो यह है कि यह वेद अन्य तीन वेदों की अपेक्षा बहुत बाद का सङ्कलन है। उक्त सम्बन्ध में गोपथ

[१] **सहायकाचार्य, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ**

ब्राह्मण का वचन उल्लेखनीय है- **चत्वारो वा इमे वेदाः ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः**[२]। यही ब्राह्मण अथर्ववेद को ज्ञान का वेद ब्रह्मवेद भी बताता है- **श्रेष्ठो ह अथर्ववेदस्तपसोऽधिजातो ब्रह्मज्ञानां हृदये सम्बभूव**[३]**। एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म...। यदमृतं तद्ब्रह्म**[४]**।**

जिनके विचार से अथर्ववेद जादू-टोना आदि अभिचार कर्मों का वेद है उन्हें अपनी भ्रान्ति-निवारणार्थ मौद्गल्य[५] पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार कृत् अथर्ववेद भाष्य का परिशीलन अवश्य करना चाहिए। मौद्गल्य-भाष्य न केवल पूर्ववर्त्ती अनेक भाष्यों से संवलित है अपितु सन्दर्भ-प्रसङ्ग, उपसर्ग, प्रत्यय, समास, धातु, विभक्ति, स्वर आदि के निमित्त ऋषियों के अभीष्ट अभिप्राय का भी सम्यक् प्रतिपादक है। सायणादि वेदभाष्यकारों के आधमर्ण्य को पण्डित बुद्धदेव जी उन्मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हुए इन भाष्यकारों के अवैदिक स्खलनों पर प्रहार करने से भी चूके नहीं हैं। अपने भाष्य के प्राक्कथन में पण्डित बुद्धदेव जी ने कहा है कि "अथर्ववेद के मन्त्रों का विनियोग कौशिकादि सूत्रों में शान्तिक-पौष्टिकादि कर्मों और रथशस्त्रादि के संस्कारों में किया गया है। वह शस्त्रादि संस्कार कैसा है? इसका तत्त्व कुछ और ही है जिस तत्त्व को न जानकर सायणाचार्य ने भूत-प्रेत-पिशाच-कृत्तिका आदिपरक व्याख्या करके वेद के स्वच्छ्, सुन्दर, गम्भीर अभिप्राय को सर्वथा बिगाड़ दिया है।[६]" ऐसा नहीं कि पं०

---

[२]गोपथ ब्राह्मण २/१६,

[३]गोपथ ब्राह्मण २/७,

[४]गोपथ ब्राह्मण ३/४,

[५]मुद्गल गोत्रोत्पन्न पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार संन्यस्त होकर स्वामी समर्पणानन्द कहलाये अतः इस लेख में सुविधा के लिये हम इस भाष्य के लिये मौद्गल्य-भाष्य अथवा सामर्पण-भाष्य नाम का प्रयोग कर रहे हैं।

[६]अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० ०५

जी की दृष्टि सायणाचार्य के प्रति छिद्रान्वेषी मात्र हो अपितु वे 'पदवाक्यप्रमाणज्ञ' के विरुद से सायण की वन्दनीयता को प्रमाणित करते हुए उनके वेदार्थ में भूल को तत्कालीन समय में आधुनिक उपयोगी विद्युतादि शास्त्रों की अनुपलब्धता को मानते हैं[७]। अपने भाष्य के प्रति उत्तमर्णों का स्मरण करना मौद्गल्य भूले नहीं हैं। वे लिखते हैं- "इस प्रकार उन विद्वदग्रण्यों से कहीं से वेद व्याख्या की पद्धति, कहीं से विद्युतादि शास्त्रों का ज्ञान, कहीं से शब्दों की व्युत्पत्ति और कहीं से विनियोग का रहस्य यथामति संग्रह करके 'ये त्रिषप्ताः' आदि पदों की व्याख्या आरम्भ करते हैं"[८]।

यह सामर्पण-भाष्य अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के केवल बारह सूक्तों पर ही उपलब्ध होता है किन्तु ऋषि परम्परा का आधमर्ण्य अर्पित करने वाला यह भ्रमों के पर्वतों को ध्वस्त करने वाले वज्र के समान सामर्थ्य सम्पन्न है। इस भाष्य में मौद्गल्य की प्रतिज्ञानुसार यौगिकवाद, समकक्षवाद एवं विज्ञाताश्रयवाद के आश्रय से व्याख्या का पल्लवन किया गया है[९]। उक्त वादों के अतिरिक्त सामर्पण-भाष्य में सस्वर मन्त्र, छन्द, पदपाठ, अन्वय, पदार्थबोध, प्रतिबोध, व्याकरणप्रक्रिया एवं मन्त्र व्याख्या से पूर्व सङ्गतिसूत्र को भी स्थान दिया गया है। सङ्गतिसूत्र मन्त्र के मन्तव्य का वास्तविक प्रतिपादक सिद्ध होता है जिसके अभाव में अन्य भाष्यों के द्वारा वही मन्त्रार्थ अस्पष्ट सा रहता है। यह भाष्य सरस मनोहर पदावली से आच्छादित संस्कृत तथा हिन्दी में प्रतिपादित है। बोध के

---

[७] अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० ०६

[८] अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० ०६

[९] उक्त वादों के विषय में विस्तार से जानने हेतु "वेद के सम्बन्ध में क्या जानो, क्या भूलो" नामक भाष्यकार की लघुपुस्तिका पढ़ें।

द्वारा मन्त्र का सामान्य भावार्थ मात्र ही प्रकट होता है किन्तु प्रतिबोध के द्वारा भाष्यकार ने मन्त्र के वास्तविक तथ्यों को, रहस्यों को उद्घाटित कर प्रकटीकरण किया है।

यथा- उदाहरणार्थ हम अथर्ववेद के प्रथम मन्त्र में आये 'त्रिषप्ताः' पद को देखें तो बोध के अन्तर्गत इस पद पर कोई विशेष विचार प्रस्तुत नहीं हुआ है किन्तु प्रतिबोध में इसे विवृत करते हुए भाष्यकार तीन पृष्ठों में विमर्श प्रस्तुत करते हैं। यहाँ 'त्रिषप्ताः' पद की सम्भावित सभी निरुक्तियों के आधार पर विभिन्न अर्थों को प्रदर्शित किया गया है। जैसे- १. त्रयः सप्ताः, २. त्रयो वा सप्त वा भावाः, ३. त्रिः सप्त, ४. त्रिगुणिताः सप्त येषु ते त्रिषप्ताः, ५. त्रयः सप्ताः समवेताः यत्र, ६. त्रयः सप्त चेति, इस प्रकार की निरुक्तियों के आधार पर १५ से अधिक अर्थों की विवेचना यह भाष्य प्रस्तुत करता है। इसके बाद यह सामर्पण-भाष्य इस मन्त्र का निष्कर्ष प्रकट करते हुए कहता है कि "इस मन्त्र में अध्यात्मविद्या, पञ्चभूतविद्या, वयोविद्या, लिङ्गविद्या, आयुर्वेदविद्या, उपासनाविद्या, सङ्गीतविद्या, शब्दविद्या, चित्रकला, और राजनीति का बल वाचस्पति मुझे देवे ऐसी प्रार्थना की गई है[१०]।" विशेष तथ्य यह है कि भाष्यकार अपने ही मन्तव्य पर इतिश्री नहीं मानते हैं अपितु त्रिषप्ता पद से अन्य विद्याओं की सम्भावनाओं को भी स्वीकार करते हैं। विद्वान् यथावसर अन्यान्य विद्याओं की ऊहा कर सकते हैं। मन्त्र में प्रयुक्त 'विश्वा रूपाणि बिभ्रतः' (अर्थात् संसार के सारे रूपों को धारण करते हुए) आदि पद, ये त्रिषप्ताः पद के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। संसार के सारे रूपों को धारण करने के लिये ये त्रिषप्ताः के अनेक अर्थ करने ही होंगे। यह त्रिषप्ताः पद वाणी द्वारा वर्णनीय सभी पदार्थों को अपने अन्दर

---

[१०] अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० ९

समाविष्ट किये हुए है। भगवती श्रुति के संक्षिप्त पदों में कितना असीमित सामर्थ्य सन्निहित है इसका सम्यक् आकलन असम्भव ही है।

अथर्ववेद के प्रथम सूक्त के चार मन्त्रों पर मौद्गल्य-भाष्य की सङ्गति अद्भुत है। ऐसा बोध अन्य भाष्यकारों द्वारा उपस्थापित ही नहीं किया जाता है। चौथे मन्त्र में सङ्गति बिठाते हुए भाष्यकार का मन्तव्य है कि प्रथम तीन मन्त्रों में वाचस्पतिर्दधातु, वाचस्पते पुनरेहि, वाचस्पतिनियच्छतु कहकर श्रुति में वाचस्पति का आह्वान किया गया है। पुनः चौथे मन्त्र में भक्त की भक्ति की पराकाष्ठा प्रकट होती है चूंकि इस मन्त्र में भक्त की अपेक्षा है कि जिसे मैंने तीन बार पुकारा है क्या वह मुझे एक बार भी नहीं पुकारेगा, अब तो वह हमें बुलाये[११]। इसीलिये मन्त्र में वाचस्पतिर्ह्वयताम् अर्थात् वह वाचस्पति हमारा आह्वान करे ऐसा कहा गया है।

इसी प्रकार द्वितीय सूक्त के मन्त्रों की व्याख्या में भाष्यकार की ऊहा द्रष्टव्य है। शर शब्द का अर्थ करते हुए सामान्यार्थ के रूप में बाण एवं विशेषार्थ के रूप में ज्ञान अर्थ की ऊहा मन्त्र के वास्तविक निहितार्थ का प्रकटीकरण करती है। जिसप्रकार बाण को धनुष के द्वारा सन्धान किया जाता है उसी प्रकार से अज्ञान रूप शत्रु को मारने के लिये भूतकाल में संगृहीत और भविष्य में संग्रह किये जाने वाले ज्ञानरूप दो कोटियों पर प्रयत्न रूप प्रत्यञ्चा पर जो वर्त्तमान उपलब्ध ज्ञानरूप शर है उसका भी प्रदाता पर्जन्य के समान सबको तृप्त करने वाला वह परमपिता है। यहाँ सामान्य शर से ज्ञानरूप शर की तथा सामान्य पर्जन्य अर्थात् बादल से सबको तृप्त करने हारे अपितु उस पर्जन्य की भी जिसकी कृपा से, जिसकी व्यवस्था से जल के धारण वर्षण की सामर्थ्य है उस परमात्मा के

[११]अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० १३

लिये पर्जन्य[१२] पद मन्त्र में रखा गया है। अन्यथा मन्त्र का एक सामान्य अर्थ ही प्रकट होता है कि पर्जन्य के बरसने से सरकण्डे भूमि में उत्पन्न होते हैं। लेकिन यदि इस शर का अर्थ ज्ञान किया जाये जैसा कि मौद्गल्य-भाष्य में बताया गया है तब यही सामान्य मन्त्रार्थ विशेषार्थ में परिणत हो जाता है[१३]।

इस प्रकार अथर्ववेद के आरम्भिक सूक्तद्वय में आये शर के बाण, मुञ्ज आदि अर्थों के अनुसार मन्त्रों का भाष्य प्रस्तुत किया गया है। इसी परम्परा में तृतीय सूक्त का देवता पर्जन्य भी है। यहाँ मौद्गल्य भाष्य में हमें एक अनुपम नवीनता दृष्टिगत होती है। यहाँ शर के मुञ्ज जो कि भावप्रकाश आदि ग्रन्थों में ओषधि स्वरूप वर्णित है उसके गर्भाधान के निमित्त उपयोग का वर्णन तो भाष्यकार द्वारा किया ही गया है किन्तु विलक्षणता तो यह है कि उन्होंने यहाँ शर का एक और अर्थ जो कि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रशस्त है, उसकी ओर ध्यान आकृष्ट किया है। शर का ब्राह्मण ग्रन्थोक्त वह अर्थ है जल[१४] जिसको मन्त्रार्थ में स्थान देकर श्रुति का वास्तविक निहितार्थ प्रकट किया गया है। जल और दर्भ के सेवन से ब्रह्मचारी रुद्धवीर्य होकर सन्तानोत्पत्ति में समर्थ होता है। इस भाष्य में इस तृतीय सूक्त के प्रथम मन्त्र का एक और अधिराष्ट्र परक सोपपत्तिक अर्थ प्रस्तुत कर भाष्यकार ने ऋषि परम्परा का ही निर्वाह किया है। जहाँ शर

---

[१२]पर्जन्य की निरुक्ति करते हुए बताया गया है कि पर्षति सिञ्चति इति पर्जन्यः ... पर्जन्यस्तृपेराद्यन्तविपरीतस्य तर्पयिता जन्यः परो जेता वा जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम् (निरुक्त १०/१०) तृपेर्विचि आद्यन्तयोर्वणयोर्विपर्ययः। जन्यः जनेभ्यो हितः ... इस प्रकार निरुक्त एवं उणादि प्रत्ययान्त निरुक्तियों के आधार पर भाष्यकार ने पर्जन्य का अर्थ परमात्मा भी किया है।

[१३]अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० १४-१५

[१४]आपो दर्भाः। शतपथ ब्राह्मण २.२.३.११

का ज्ञान रूप अर्थ का उपयोग करके भाष्य का प्रतिपादन किया है। जैसे दर्भ के सेवन से शरीर स्वस्थ होकर अभिनव ऊर्जा सम्पन्न सन्तति को उत्पन्न करता है। वैसे ही राष्ट्र-शरीर में ज्ञान से अज्ञान को समाप्त कर नवीन सभ्य ऊर्जस्वी नागरिकों का मार्ग प्रशस्त होता है। यहाँ पर्जन्य का अर्थ 'मेघ की भाँति सर्वत्र बरसने वाले संन्यासी या विद्या प्रदाता कुलपति' किया गया है। जिनके माध्यम से राष्ट्रशरीर का कल्याण होता है।

इस सूक्त की विशेषता यह भी है कि इसके अधिकांशतः मन्त्रों का पूर्वार्द्ध लगभग समान हैं भेद है तो बस यह है कि प्रथम मन्त्र में जहाँ पर्जन्य है वहीं दूसरे मन्त्रों में उसके स्थान पर क्रमशः मित्र, वरुण, चन्द्र, सूर्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है। जिनके सामान्यार्थ के साथ-साथ विशिष्टार्थ को भी दर्शाया गया है। जैसे- मित्र शब्द का व्याख्यान करते हुए मौद्गल्य भाष्य में भाष्यकार ने अपने ब्राह्मणग्रन्थों से प्रमाणों की झड़ी लगा दी है[१५]। लगभग आठ पृष्ठों में उक्त सूक्त के द्वितीय मन्त्र पर अद्वितीय भाष्य उपस्थापित किया गया है। प्राणो वै मित्रः, प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ आदि शतपथ के प्रमाण विशेष हैं। मन्त्र में शर के पिता के रूप में मित्र का वर्णन आने पर मौद्गल्य-भाष्य इन ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर सिद्ध करते हैं कि यह मित्र पद शर के जन्म में सहयोगी मित्र नामक वायु है। ब्राह्मण कहते हैं कि मित्र और वरुण क्रमशः प्राण और उदान नामक वायु हैं। इन्हीं मित्रावरुण के संयोग से हमारे चारों ओर विचरण करने वाले वायु का निर्माण होता है। इनके संयोग से जल का भी निर्माण होता है। भाष्य में आधुनिक वैज्ञानिक नामों का उल्लेख करते हुए सप्रमाण विस्तृत विश्लेषण के साथ व्याख्या की गई है। मित्र और वरुण से अभीष्ट प्राण और उदान पर याज्ञवल्य, सायण, दयानन्द आदि

[१५] द्रष्टव्य अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० २५-३३

महर्षियों के प्रमाणों के ससन्दर्भ मण्डन के साथ-साथ समकालिक आचार्यों के विरोधी मतों का भी तार्किक खण्डन भी प्रस्तुत किया गया है। अब इस मन्त्र का अधिराष्ट्र अर्थ करते हुए मित्र का अर्थ राजसभा में राष्ट्रोपयोगी नियम बनाने वाला राजपुरुष किया गया है। इसमें भी ऋग्वेद में आये मित्रावरुणौ वस्त्राणि वसाथे[१६] को उद्धृत करते हुए भाष्यकार कहते हैं कि ऋग्मन्त्रों में आये वस्त्रादि धारण, मन्त्रदान, व्रतरक्षण, बुद्धिमत्त्व आदि विशेषण वायु से सम्बद्ध नहीं हो सकते अतः अधिराष्ट्र परक अर्थ करते हुए नियमनिर्माता नीतिनिर्धारक राजपुरुषों की संज्ञा मित्र कही गई है। वरुण का अर्थ शर के पक्ष में उदान अर्थात् हाइड्रोजन नामक वायु तथा अधिराष्ट्र में राज्य में अनुशासन दण्डविधान द्वारा शान्ति रखने वाला पुलिस विभाग किया गया है। अग्रिम मन्त्रों में अधिराष्ट्र परक अर्थों में चन्द्र का अर्थ परिश्रान्त प्रजाजनों को आह्लादित करने वाला राजपुरुष, इसी प्रकार सूर्य का अर्थ राष्ट्र में विद्या का प्रचार-प्रसार करने वाला राजपुरुष किया गया है। इसमें पौनःपुन्येन ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया गया है[१७]। भगवती श्रुति के रहस्यों को प्रकाशित करने में मौद्गल्य-भाष्य समुद्र में स्थित प्रकाश स्तम्भ की भाँति उपकारक है।

अथर्ववेद के इस तृतीय सूक्त का छठा मन्त्र सामान्य रूप से शरीर के नीरोग रहने के लिये शरीर के लिये अहितकर मलों का मूत्र आदि उत्सर्जन क्रियाओं के माध्यम से वेग-पूर्वक बहिर्गमन का उल्लेख करता है किन्तु मौद्गल्य-भाष्य में बोध द्वारा अधिराष्ट्र अर्थ विशेष चमत्कार प्रस्तुत करता है। भाष्यकार लिखते हैं कि "मित्र को चाहिये कि वह दूषित

---

[१६] ऋग्वेद, १/१५२/१

[१७] द्रष्टव्य अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० ३८-४१

शासन-विधान को, इसी प्रकार वरुण दूषित पुरुष के, चन्द्र विषय-वासना को पैदा करने वाले संगीत, कला आदि के, सूर्य प्रमादादि दोषों से युक्त साहित्य के दोषों को इस प्रकार दूर करें जिस प्रकार शरीर मूत्र को दूर करता है। इस प्रकार मित्रादियों का कर्त्तव्य है कि वे राष्ट्ररूपी शरीर को निर्दोष बनावें।[१८]"

इस प्रकार मौद्गल्य-भाष्य की ऊहा द्वारा भगवती श्रुति का वास्तविक अवगाहन सम्भव है। वेदार्थ के विशिष्ट बोध के अभाव में श्रुति राष्ट्रिय-जन के विमर्श से बहिर्भूत ही रही है। अतः आज आवश्यकता है कि पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार की व्याख्या पद्धति को आधार बनाकर लोकोपयोगी भाष्यों का निर्माण किया जाये जिससे वेद का बोध जन-जन तक पहुँच सके। यह हमारा दुर्भाग्य ही है कि मौद्गल्य-भाष्य केवल निदर्शन मात्र बारह सूक्तों पर ही उपलब्ध है। लेकिन यह सौभाग्य भी है कि भगवती श्रुति के स्वरूप के समक्ष अत्यल्प होते हुए भी कम से कम हमें मौद्गल्य-भाष्य का निदर्शन प्राप्त तो है। निश्चय ही विद्वान् इस ओर अपनी लेखनी मौद्गल्य-भाष्याधारित पद्धति के आश्रय से चलायेंगे जिससे श्रुति अपने वास्तविक स्वरूप में लोक-कल्याण का मार्ग भूरिशः प्रशस्त करेगी। **संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि॥**

[१८] द्रष्टव्य अथर्ववेदभाष्य पं० बुद्धदेव कृत्- पृष्ठ सं० ४४

अथर्ववेद में वर्णित रोग एवं औषधियाँ

श्रीमती रेखा देवी शर्मा[1]

मानव जीवन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाला वैदिक वाङ्मय न केवल भारतीय संस्कृति अपितु विश्व संस्कृति की आधारशिला है। वैदिक वाङ्मय अज्ञान के अन्धतमस से भवसागर में दिग्भ्रमित मानव को ज्ञानालोक से प्रकाशित करने वाला, भव बाधाओं की निवारक एवं जगत्-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाली ज्ञानराशि का अजस्र ज्योति पुंज है। यह मानव को कर्तव्य-पथ पर प्रेरित कर उसके पुरुषार्थ का साधक है। वैदिक वाङ्मय में अथर्ववेद का अप्रतिम स्थान है। इसे वैदिक-वाङ्मय का मस्तकाभूषण कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका प्राचीनतम नाम 'अथर्वाङ्गिरस' वेद है। अथर्वन् और अङ्गिरस ऋषियों द्वारा दृष्ट मन्त्रों के संग्रह के कारण इसको इस नाम से जाना जाता है। जीवन के सर्वांगीण विकास के कारक सभी तत्त्वों का समावेश इसे अन्यों से भिन्न और महत्त्वपूर्ण बनाता है। **'सर्वमेव शमस्तु नः।**[2] अर्थात् हमारे लिए सब मङ्गलमय हो। इस प्रकार सम्पूर्ण सृष्टि के मङ्गल की कामना

[1] सहाचार्य, संस्कृत, महारानीश्रीजया राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर (राज.)

[2] अथर्ववेद,१९/९/१४

इसके मूल में देखने को मिलती है। विषय-वैविध्य, स्थूल से सूक्ष्मतम तत्त्वों का प्रतिपादन, शास्त्रीयता के साथ व्यवहारिकता का सम्मिश्रण इसकी मुख्य विशेषता है। अथर्ववेद के २० काण्डों में परलोक के साध्य यज्ञ, अनुष्ठान, संस्कारादि विषयों के साथ लौकिक विषयों का भी विस्तार से वर्णन किया गया है। मनुष्य के दैनन्दिन जीवन से सम्बन्धित आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और स्वास्थ्य सम्बद्ध विषयों का अध्ययन इसे अधिक प्रासङ्गिक और लोक के निकट लाता है। विषय की विविधता एवं विस्तार के आधार पर यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह वेद **'गागर में सागर'** है।

भाष्यकार सायण ने अथर्ववेद का महत्त्व बताते हुए कहा है कि अन्य तीन वेद स्वर्ग प्राप्ति आदि पारलौकिक फल के साधक हैं, वहीं अथर्ववेद लौकिक और पारलौकिक दोनों फलों को देने वाला है।[३] मनुष्य जीवन का परम प्रयोजन पुरुषार्थ-चतुष्टय की प्राप्ति है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ की प्राप्ति स्वस्थ एवं निरोगी शरीर से ही की जा सकती है। चरक सूत्र में कहा भी है-

'धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।'[४] धर्म की सिद्धि स्वस्थ शरीर से ही सम्भव है। दीपशिखा महाकवि कालिदास ने कुमारससम्भवम् महाकाव्य के शिव-पार्वती संवाद में **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**[५] कहकर स्पष्ट स्वीकार किया है कि शरीर ही धर्म की साधना का प्रमुख साधन या माध्यम है। यद्यपि पाञ्चभौतिक मानव देह नश्वर है तथापि वह

[३] द्विवेदी, कपिलदेव, अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, विश्व भारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही), उत्तरप्रदेश संस्करण -२, सन् २००२, पृ.४

[४] कल्याण विशेषाङ्क, आरोग्य अङ्क, पृ.३२५

[५] कुमारसम्भवम्, ५/३३

अनमोल एवं रक्षणीय है। लोक एवं परलोक की उपासना शरीर से ही सम्भव है। आदिज्ञान राशि वेदों में दीर्घायु और शतायु की कामना की गयी है, जो शरीर के निरोगी होने से ही सम्भव है। '**भूयश्च शरदः**' कहकर सौ से भी अधिक वर्षों तक '**अश्मा भवतु ते तनूः**' अर्थात् पत्थर के समान सुदृढ़ बलशाली शरीर को धारण करते हुए समस्त पदार्थों को देखने एवं सुनने के साथ सांसारिक सुखों के उपभोग और लोकहित में लगाने की बात मानव शरीर के महत्त्व को ही दर्शाती है। स्वच्छ मन निरोगी शरीर का आधार है। शास्त्रकारों का कथन है कि सात्त्विक आहार ग्रहण करने से मन की शुद्धि होती है और मन के शुद्ध होने पर अविचलित स्मरण शक्ति प्राप्त होती है- '**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।**'[६] इसी अभिप्राय से पञ्चकोशों का विधान मिलता है। जिनमें अन्नमय कोश, प्राणमय कोश तथा मनोमय कोश के बाद विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोशों की चर्चा इस बात का स्पष्ट सङ्केत है कि शुद्ध मन, प्राण से युक्त शरीर ही विज्ञान एवं आनन्द का प्रदाता है। स्वस्थ प्राण शक्ति आरोग्य का प्रमुख कारण है। अथर्ववेदानुसार प्राण ही परमात्मा है- "**प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे**"[७]। ब्रह्मचर्य आरोग्य का प्रमुख साधन है। अथर्ववेद में स्पष्ट कहा है कि-'**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत** '[८] अर्थात् ब्रह्मचर्यरूपी तप के द्वारा विद्वान् देवगण मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं।

अथर्ववेद का लक्ष्य स्वस्थ रहते हुए दीर्घकाल तक लोक में रमण करते हुए परलोक की सिद्धि है। तदर्थ अथर्ववेद में बारम्बार उपदेश

---

[६] कल्याण विशेषाङ्क, आरोग्य अङ्क, पृ.३२६

[७] अथर्ववेद,११/४/१

[८] अथर्ववेद,११/५/१९

किया गया है कि मनुष्य द्वारा ग्राह्य भोज्य एवं पेय वस्तुएँ निर्दोष एवं विषहीन हों- **यदश्नासि यत् पिबसि ... अन्नम् अविषं कृणोमि।**[९] सभी रोगों का कारण दूषित आहार-विहार जन्य विष है। यह दोषाणु, विषाणु या रोग के कीटाणु के रूप में शरीर में प्रविष्ट होकर रोगोत्पत्ति का कारक है। अथर्ववेद में लिखा है - **यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्**।[१०] ये विषाणु सामान्यत: आँखों से नहीं दिखते किन्तु मनुष्य जीवन को हानि पहुँचाते हैं। इनमें से अधिकांशतः सर्पणशील, रेंगने वाले हैं, उनको नष्ट करना ही चाहिए। अथर्ववेद में औषधि प्रयोग एवं मन्त्र प्रयोग से उनको नष्ट करने का उपदेश मिलता है -'रक्त और माँस को दूषित करने वालों को बहुत बड़े साधनों से मारता हूँ। जो जन्तु मेरे द्वारा बनायी गयी औषध आदि से पीड़ित हैं या जो नहीं पीड़ित हैं, वे सब सूख गए हैं। जो बच गए, पहले नहीं मरे, उनको मंत्र के बल से मारता हूँ।'[११]

रोगों के इन विषाणुओं/ कीटाणुओं को सम्पूर्ण नष्ट करने से ही स्वस्थ वातावरण सम्भव है। इसलिए कृमिकुल के निवेश स्थान को ही नष्ट करने का विधान किया है। जिस अवयव में विष रहता है, उस अवयव को नष्ट करने का उल्लेख है।[१२] ऋषिगण इस बात से अवगत थे कि विषाणुओं को ज्ञान-विज्ञान, तेज या अग्नि और बल से ही नष्ट किया जा सकता है। सब पुरुष कृमियों का, सब स्त्री जाति कृमियों का सिर पत्थर से पीसता हूँ, इनके मुख को अग्नि से जलाता हूँ।[१३] विविध गन्धों के प्रयोग

[९] अथर्ववेद, ८/२/१९

[१०] अथर्ववेद, ९/१३/१२

[११] अथर्ववेद, २/३१/३

[१२] अथर्ववेद, २/३२/५-६

[१३] अथर्ववेद, ५/२३/१३

से भी इनको नष्ट किया जाता था। **तानोषधे! त्वं गन्धेन विषूचीनान् विनाशय।**[१४]

अथर्ववेद में विषाणुजन्य अनेक रोगों का वर्णन प्राप्त है और उनके उपचारार्थ विविध औषधियों का विस्तार से विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में विशेष रोगों एवं औषधियों का वर्णन प्रस्तुत है -

ज्वर -

अथर्ववेद में (तक्मन्) का वर्णन करते हुए लिखा है कि ज्वर रोज, दूसरे, तीसरे, चौथे दिन, सर्दी, गर्मी और बरसात आदि में होता है।[१५] ज्वर कफ (खाँसी) और क्षय रोग का मित्र है। चिकित्सा नहीं होने पर ज्वर क्षयरोग तक भी बढ़ जाता है। ज्वर को वरुण का पुत्र कहा है।[१६] वरुण जलाधिपति है। अत: ज्वर रोग को जल से उत्पन्न होने वाला समझना चाहिए। दूषित जल से या रुके हुए जल से यह रोग होता है। ज्वर के कारण होने वाले कामला रोग का भी उल्लेख है। तक्मनाशन (ज्वरहरण) के लिए कुष्ठ (कूठ) का विशेष वर्णन है।

राजयक्ष्मा -

अथर्ववेद में 'राजयक्ष्मा'[१७] नाम पृथक् से आया है- '**मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्माद् उत राजयक्ष्मात्**' इससे स्पष्ट विदित होता है कि यक्ष्मा व राजयक्ष्मा दोनों शब्द अलग-अलग अर्थों में प्रयुक्त होते थे। यक्ष्मा रोग को कहते हैं और रोगों का राजा राजयक्ष्मा है। यह शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में हो सकता है। ऋग्वेद में विविध अङ्गों में

---

[१४] अथर्ववेद, ८/६/१०

[१५] अथर्ववेद, ५/२२/१३

[१६] अथर्ववेद, १/२५/३

[१७] अथर्ववेद, ३/११/१

व्याप्त इस रोग को अङ्गों का नाम लेकर दूर करने का उपदेश मिलता है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेकानेक रोगों के नाम भी मिलते हैं।

अथर्ववेद में प्राप्त स्वस्थ जीवनोपयोगी कतिपय औषधियाँ -

पिप्पली -

यह औषधि जीवन के लिए उपयोगी है। पिप्पली पीपल को कहते हैं। अथर्ववेद में लिखा है कि जो व्यक्ति इसका सेवन करता है, वह कभी नष्ट नहीं होता। पिप्पली वातरोग और उन्माद अपस्मार की उत्तम औषधि है।[९८] पिप्पली आपात भद्रा है। सर्वप्रकार से मङ्गलकारी है तथापि अधिक प्रयोग निषिद्ध है। यह योगवाही औषधि है, जिस वस्तु के साथ दी जाती है, उसके गुणों को बढ़ा देती है। इसलिए इसका अधिक सेवन वर्जित है।

सोमलता -

सोमलता मूजवत् पर्वत पर पायी जाने के कारण मोजवत भी कहलाती है। कुष्ठ (कुठ) औषधि को सोमलता का मित्र कहा गया है, क्योंकि सोमलता हिमालय पर कुष्ठ औषधि के पास ही होती है।

अपामार्ग -

इसको ग्रामीण क्षेत्र में 'चिरचिटा' या 'ओंगा' नाम से जाना जाता है। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण औषधि है। अथर्ववेद में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है कि -

सुधामारं तृष्णामारं तथा अनपत्यताम्।
अपामार्ग! त्वया वयं सर्वं तदपमृज्महे॥
अपामार्ग औषधीनां सर्वासामेक इद् वशी।
तेन ते मृज्म अस्थितमथ त्वमगदश्चर॥[९९]

---

[९८] अथर्ववेद, ६/१०९/१-३

[९९] अथर्ववेद, ४/१७/६-८

अपामार्ग क्षुधा, तृष्णा, अनपत्यता में प्रयुक्त होती है। इसके चावलों की खीर खाने से भूख और प्यास नहीं लगती है। इसके उपयोग से देवों ने असुरों पर विजय प्राप्त की थी –

यददो देवा असुरान् त्वयाग्रे निरकुर्वत्। [२०]

पृश्निपर्णी -

इसको चित्रपर्णी, पीठवन, पठौनी आदि कहते हैं। यह रक्तदोषों को दूर कर रोग के कृमियों को नष्ट करती है। आयुर्वेद में पृश्निपर्णी दशमूल, लघुपञ्चमूल की एक औषधि है। रक्तस्तम्भन एवं निर्बलता को दूर करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।[२१]

रोहिणी[२२]

रोहिणी नामक वनस्पति से मांस मज्जादि की शीघ्र वृद्धि होती है। यदि शत्रु के शस्त्र अथवा पत्थर से व्रण हुआ हो तो इससे शीघ्र ठीक होता है। जिस प्रकार उत्तम तक्षक रथ के अङ्गों को ठीक करता है, उसी प्रकार से रोहिणी वनस्पति शरीररूपी रथ को शीघ्र ठीक करती है।

मधुला[२३]

यह औषधि वाणी में माधुर्य का सञ्चार करती है। ऋतजाता और ऋतावरी इसके विशेषण हैं- **ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः।** इससे विदित होता है कि सत्य और प्रिय सम्भाषण माधुर्य का साधन है। यह औषधि कटु बोलने वाले या निन्दकों से रक्षा करने वाली है।

---

[२०] अथर्ववेद, ४/१९/४

[२१] विद्यालङ्कार, अत्रिदेव, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ.३६

[२२] वही

[२३] अथर्ववेद, ५/१५/१

मुञ्ज[२४]

यह मूंज है। यह रक्तस्राव को रोकती है- **यथा द्यां च पृथिवी चान्तस्तिष्ठति तेजनम्** एवं **रोगं चास्रावं चान्तस्तिष्ठतु मुञ्ज इत्**।

ऋषभ[२५]

बलवर्धक और वीर्यवर्धक औषधियों को ऋषभ औषधि कहा जाता है - **सार ऋषभाणाम्**। पुत्रोत्पत्ति हेतु इसका प्रयोग किया जाता है।

शर[२६]

सरकण्डा या मूंज को घावों की चिकित्सा का साधन बताया गया है- **विद्मा शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्**।

सहस्रकाण्ड[२७]

सहस्रकाण्ड औषधि दूर्वा या दूब है। इसकी हजारों शाखाएं होने से इसे सहस्रकाण्ड औषधि कहते हैं - **दिवो मूलमवततं पृथिव्या अध्युत्ततम्**। **तेन सहस्रकाण्डेन परि णः पाहि विश्वतः**। यह शाप कुदृष्टि आदि दोषों को दूर करती है।

दशवृक्ष[२८]

अथर्ववेद में गठिया रोग की औषधि के रूप में इसका उल्लेख प्राप्त है - **दशवृक्ष मुञ्चेम रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु।** संभवतः यह दशमूल ही है। वैद्यक ग्रन्थों में यह वातनाशक औषधि है।

इनके अतिरिक्त वल्मीक में मिलने वाली औषधि विशेष से

---

[२४] अथर्ववेद, १/२/४

[२५] अथर्ववेद, ४/४/४

[२६] अथर्ववेद, १/२/१

[२७] अथर्ववेद, २/७/३

[२८] अथर्ववेद, २/९/१

अतिसार, अतिमूत्र आदि रोगों की शान्ति;[२९] हरिणशृङ्ग और उसके चर्म से क्षय, कुष्ठ, अपस्मारादि नाशन; शतवीर्या, दूर्वा से दीर्घायुष्य, नाना रोग शान्ति; वृषा शुष्मादि से वृष्यत्व; कुष्ठ औषधि, गुग्गुल धूप की गन्ध से यक्ष्मनाशन; मृत्युभय की निवृत्यर्थ दर्भमणि बन्धन आदि विषय अथर्ववेद में आए हैं।

अथर्ववेद में अनेक ऐसे मन्त्र प्राप्त हैं, जिनमें स्पष्टतः औषधि वर्णित नहीं है तथापि उनसे रोगों की निवृत्ति की कामना की गयी है। **केशवर्धन**[३०] की कामना करते हुए कथन है कि - **हे औषधि जिसे जमदग्नि ने खोजा था, बालों को बढ़ाने वाली उसी औषधि को मैं खोदता हूँ। आगे कथन है कि जो केश अङ्गुलियों से नापे जा सकते थे, वे अब लम्बे हो गए हैं। ऐसी औषधि केशों के अग्रभाग को लम्बा, मध्य को स्थिर एवं मूल को सुदृढ़ कर नड (नरकट) के समान बढ़ें।** क्लीवत्व नाशक औषधि से पुरुष की क्लीवता/ नपुंसकता को दूर करने की प्रार्थना मिलती है -

त्वं वीरुधां श्रेष्ठतमा भि श्रुतास्योषधे।
इमं मे अद्य पुरुषं क्लीवमोपशिनं कृधि॥[३१]

सौभाग्य वर्धनकारी[३२] औषधि का उल्लेख करते हुए प्रार्थना है कि- हे औषधि तुम सुभग करो, तुम्हारे सैकड़ों प्रतान हैं, तैतीस वितान हैं और हजारों पत्ते हैं। औषधि के स्वरूप का वर्णन करते हुए पत्नी कामना करती है कि हे औषधि! तुम फलवाली भूरे रङ्ग की कल्याणकारी हो।

---

[२९] विद्यालङ्कार, अत्रिदेव, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ.४४

[३०] अथर्ववेद, ६/१३७/१-३

[३१] अथर्ववेद, ६/१३८

[३२] अथर्ववेद, ६/१३९

इस पति और मुझ पत्नी को समान हृदयवाली करो। जिस प्रकार नकुल साँप को काट करके फिर से जोड़ देता है, उसी प्रकार हमारे विरोध को हटाकर हमें फिर जोड़ दो। इसी प्रकार विद्रधि, बलास और रक्त के रोग के नाश का उपदेश मिलता है[३३] - हे वनस्पते! विद्रधि, बलास और रक्त के रोग का नाश कर। जो बलास दोनों कक्षों में और जो कफ दोनों मुष्कों में ठहरा है, उसे दूर करता हूँ। इस प्रकार अथर्ववेद में ज्ञात, अज्ञात विविध औषधियों का वर्णन विविध रोगों के उपचारार्थ प्राप्त होता है। अथर्ववेद में औषधियों के साथ-साथ कतिपय वृक्षों और लताओं के नाम प्राप्त होते हैं। वृक्षों और लताओं का पर्यावरण के संतुलन में जितना महत्त्व है उतना ही वे मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से भी आवश्यक एवं महनीय हैं। अथर्ववेद में उपदेश है कि जहाँ पर अश्वत्थ (पीपल), न्यग्रोध (बरगद), ये महावृक्ष अपने पत्तों के साथ प्रसन्नता से रहते हैं, अर्जुन, पिलखन, आघाट, कर्करी, अजशृङ्गी, अराटकी, तीक्ष्णश्रृङ्गी ये वृक्ष एवं वनस्पतियां रहती हैं, वहाँ पानी पर चलने वाले विषजन्तु नहीं रहते हैं।[३४] हम जानते हैं कि बहुत सारे रोग जलज विषाणुओं से होते हैं अतः शुद्ध जल हेतु वृक्ष और औषधियों की उपादेयता वन्दनीय है। इसी प्रकार प्रसङ्गवश यहाँ कतिपय विशेष वृक्षादि का वर्णन करना उचित होगा -

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अथर्ववेद में ऐसी चमत्कारिक औषधियों का वर्णन मिलता है, जिनके प्रयोग के द्वारा मनुष्य स्वस्थ और शताधिक जीवन जीते हुए ऐहिक और पारलौकिक लक्ष्यों को सिद्ध कर सकता है। आज विविध बीमारियों से ग्रसित होकर हम एलोपैथी की ओर भाग रहे हैं, जिनके दुष्प्रभाव के फलस्वरूप रोगी एक रोग का उपचार

[३३] अथर्ववेद, ६/१२७/१-२

[३४] अथर्ववेद, ४/३७/४-६

कराता है और अन्य रोगों से ग्रसित हो जाता है। ऐसे में हमें आवश्यकता है आयुर्वेदीय चिकित्सा की ओर लौटने की। आयुर्वेद में प्रयुक्त औषधियां रोग का समूल नाश कर मनुष्य में जीवन-दायिनी प्राणशक्ति का सञ्चार करती हैं।

सर्वविधचिकित्सा का उत्स अथर्ववेद

डॉ० देव प्रकाश[1]

वेद के सम्बन्ध में ऋषियों की धारणा के सदैव बहुमुखी आयाम रहे हैं। इसी प्रकार की महत्ता का प्रतिपादन महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य में **"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति"**[2] से निर्देश किया है। इसी बात को महर्षि दयानन्द जी ने इस प्रकार निर्दिष्ट किया है- **"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।**[3]

अस्तु, वेद अनादिकाल से लेकर आज से कुछ पहले तक सारे जगत् का एकमात्र धर्मशास्त्र व विज्ञान रहा है। वेद ही एक ऐसा गम्भीर शास्त्र है जो अपौरुषेय कहलाता है। जो दार्शनिक इसे पौरुषेय मानते हैं, वे भी पुरुष (जीव) व्यक्तिकृत नहीं मानते। उनके मत में पुरुष नाम परमेश्वर का है। इस प्रकार वेद को चाहे पौरुषेय मानिए, चाहे अपौरुषेय, यह परमेश्वर कृत सत्यशास्त्र वेद है। यह बात सर्वथा उपपादित हो जाती

---

[1] **वेद विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार**

[2] महाभाष्य पस्पशाह्निक

[3] आर्य समाज का तृतीय नियम

है। भारत में वा अन्यत्र दो-तीन सहस्र संवत्सरों के आसन्न समीप में जो-जो धर्मशास्त्र रूप से ग्रन्थ हुए हैं, उनको देखने से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि एकमात्र परमेश्वरशास्त्र वेद ही है, वैदिकदर्शन ही सम्यग्-दर्शन है। जिस किसी को कभी वेदार्थ पर्यालोचन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है- वह जान सकता है कि वेद कहाँ तक गम्भीर विषय को गम्भीरतम शैली से प्रतिपादन करता है। यद्यपि हमारे भारत में अनेक मत हैं, अनेक धर्मशास्त्र हैं, अनेक आचार हैं; तथापि वेद उन सब धर्म मत रूप राजाओं का सम्राट् है। वेद का नाम लेकर वेद के प्रामाण्य से ही भारतीय धर्मशास्त्र अपने को तदनुकूल बतलाते हुए प्रमाणीकरणीय हुए हैं।

यह वेद ब्रह्माण्डीय विज्ञान है। ईश्वर ने जिस नियम के अनुसार इस विश्व की रचना की है, जिस नियम के आधार पर विश्व को खड़ा कर रखा है - उन्हीं नियमों के मानने का नाम वेद है। अस्तु जिस वैदिक विज्ञान के प्रभाव से किसी समय भारतवर्षीय विद्वानों का इतना सिर ऊँचा था कि वे जगद्गुरु माने जाते थे - **“एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः”**[४] इस प्रकार की श्रद्धा इन वेदज्ञों में सम्पूर्ण विश्व की थी। क्योंकि द्विजों का मुख्य कर्म वेदाध्ययन करके वैदिक विज्ञान से समाज, राष्ट्र को अभ्युदय व निःश्रेयस के पथ पर अग्रसरित करना है। मनु भगवान् के वचनानुसार“ **(ताभ्यां) वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ”**[५] धर्म का विज्ञान अवश्य ही इस वेद में वर्णित है। वेद के देखने से भी धर्म के सर्वविज्ञान स्पष्ट प्रतीत होते हैं। शाश्वत नियम है कि **“धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः”**[६] वेद धर्म की आप रक्षा करोगे तो

---

[४] मनुस्मृति १.१३९

[५] मनुस्मृति १.१२९

[६] मनुस्मृति ८.१५

वेद आपकी रक्षा करेगा।

अस्तु वैदिक विज्ञान के दो विभाग हैं। एक केवल सिद्धान्तमात्र और दूसरा प्रायोगिक।

अथर्ववेद **प्रायोगिक विज्ञान** है। वैसे तो चारों वेद ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से समान महत्त्व रखते हैं। किन्तु अथर्ववेद के विषय में गोपथकार ऋषि ने कहा है। **येऽथर्वाणस्तद्भेषजं यद्भेषजं तदमृतं यदमृतं तद् ब्रह्म॥**[७] अर्थात् जो निश्चल ज्ञान वाले चारों वेद है वे दोष निवारक औषध रूप हैं। अथवा अथर्ववेद के विद्वान् भी औषधरूप है क्योंकि अथर्ववेद को भैषज्यवेद भी कहा गया है। जो भेषज है वह अमृत ही तो है। जो अमृत है वह ब्रह्मा (चारो वेद) ही तो है। अथवा चारों वेदों का विद्वान् ही तो ब्रह्मा है, अमृत है। इसी कारण अथर्ववेद का एक नाम **भैषज्य वेद** भी है। इसमें आयुर्वेद, चिकित्सा एवं ओषधियों आदि का बहुत वर्णन है। अथर्ववेद में इसे 'भेषजा' (भेषजानि) कहा है।

'सामवेद' की भाष्य भूमिका में सायणाचार्य का भी कथन है **'त्रयाणां अपराधन्तु ब्रह्मा परिहरेत् सदा।** 'अन्य तीन ऋत्विजों की त्रुटियों का निवारण ब्रह्मा ही करता है। ब्रह्मा के लिए यह तभी सम्भव है, जब वह निश्चित रूप से चतुर्वेदी हो और समग्र त्रयीविद्या से भलीभांति परिचित हो। उसके लिए इस प्रकार का एक यजुष् मन्त्र भी है **'समुद्रोऽसि विश्वव्यचा।**[८] 'विश्वव्यचा' (सबको व्याप्त करने वाला) और 'समुद्र' विषयक आख्यानों की सङ्गति तभी बैठती है, जब वह सभी वेदों का ज्ञाता हो। 'गोपथ ब्राह्मण' के पूर्वार्ध में भी कहा गया है –

---

[७] गोपथपूर्व ३.४

[८] यजुर्वेद ५.३३

'तस्माद् ऋग्विदमेव होतारं वृणीष्व, यजुर्विदमध्वर्युम् सामविदमुद्गातारं, अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणम्।[९] ऋग्वेदज्ञ को होता बनाओ, यजुर्वेदज्ञ को अध्वर्यु, सामवेदज्ञ को उद्गाता और अथर्ववेदी को ब्रह्मा। तथा **'प्रजापतिर्यज्ञमतनुत; स ऋचैव हौत्रमकरोत्, यजुषाध्वर्यवम्, साम्नौद्गात्रम्, अथर्वाङ्गिरोभिः ब्रह्मत्वम्।**[१०] प्रजापति ने यज्ञ का विस्तार किया। उन्होंने ऋग्वेद से होता का कार्य सम्पन्न किया, यजुर्वेद से अध्वर्यु का; सामवेद से उद्गाता का और अथर्ववेद से ब्रह्मा का।

'ऐतरेय ब्राह्मण' की निम्नलिखित उक्ति भी यही स्पष्ट सिद्ध करती है कि भलीभांति सरलतापूर्वक यज्ञ कार्य के निर्वाह के लिए ही ऋगादि रूप में संहिता विभाग हुआ - **"यद्दचैव होत्रं क्रियते यजुषाध्वर्यवं साम्नोद्गीथं व्यारब्धा त्रयी विद्या भवत्यथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते इति त्रय्या विद्यया इति ब्रूयात्"**[११] इसमें **'अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियते? त्रय्या विद्यया'** से यह भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण त्रयी विद्या ब्रह्मा की कार्य साधिका है। 'अथर्व संहिता' के अध्ययन के बिना समग्र त्रयीविद्या का ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें होता, अध्वर्यु और उद्गाता के द्वारा व्यवहार्य मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य ऋचाएँ, यजुष् तथा दूसरे मन्त्र हैं। **'ऋचान्त्वः पोषमास्ते'**[१२] 'मन्त्र की व्याख्या करते समय यास्क ने भी कहा है - **'ब्रह्मा सर्वविद्यः, सर्वं वेदितुमर्हति'**[१३] अर्थात 'ब्रह्मा सभी वेदों का ज्ञाता होता है, वह सब जान सकता है। अथर्ववेद का ज्ञाता ब्रह्मा होता है और वही यज्ञ

---

[९] गोपथब्राह्मण १.३.१.२

[१०] गोपथब्राह्मण १.३.१.२

[११] ऐतरेयब्राह्मण ५.५.८

[१२] ऋग्वेद १०.७१.११

[१३] निरुक्त १.३.३

की सब प्रकार से रक्षा कर सकता है।

'गोपथ ब्राह्मण' में भी यही कहा गया है- **'ब्रह्मैव विद्वान् यद् भृग्वङ्गिरोवित् सम्यगधीयानश्चरित ब्रह्मचर्योऽन्यूनातिरिक्ताङ्गोऽप्रमत्तो यज्ञं रक्षति, तस्य प्रमादात् यदि वाप्यसान्नैध्यात् यथा भिन्ना नौरगाधे महत्युदके सम्प्लवेत्... तस्मात् यजमानो भृग्वङ्गिरमेव तत्र ब्रह्माणं वृणीयात्।**[१४] **स हि यज्ञं तारयतीति ब्राह्मणम्।** वही विद्वान् ब्रह्मा यज्ञ की रक्षा कर सकता है, जो भृगु और अङ्गिरा ऋषियों के द्वारा साक्षात्कृत मन्त्रों का ज्ञाता है, समधीत है; ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला है, उसके शारीर में न तो कोई अङ्ग अधिक हो और न ही कम। वह प्रमाद रहित होना चाहिए। जैसे अगाध जल में नाव डूब जाती है, वैसे ही ब्रह्मा के प्रमाद, असान्निध्य और अयोग्यता से यज्ञ डूब जाता है। इसीलिए यजमान को चाहिए कि वह भृग्वाङ्गिरोवित् अर्थात् अथर्ववेदी को ही ब्रह्मा बनाये। वही यज्ञ को पार लगाता है। सामवेदी भी ब्रह्मा को ही यज्ञ का वैद्य मानते हैं - **'भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविध ब्रह्मा भवति।**[१५]

अथर्ववेद के उपवेद आयुर्वेद का वर्णन करते हुये महर्षि सुश्रुत ने कहा है- "**इह खल्वायुर्वेदमष्टाङ्गमुपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्त्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयम्भूः।**[१६] आचार्य सुश्रुत की मान्यता है कि 'यह आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है और इसके शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या (कीटाणुनाशक विद्या), कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरण ये आयुर्वेद के आठ अङ्ग हैं। इसकी रचना स्वयंभू ब्रह्म ने प्रजाओं को उत्पन्न करने के पूर्व ही कर ली

---

[१४] गोपथउत्तर २.५

[१५] छान्दोग्यब्राह्मण ५.१७.८

[१६] सुश्रुत सूत्र १.६

थी। इससे सिद्ध हुआ कि सभी प्रकार की स्वास्थ्य परक विद्या का मूल अथर्ववेद ही है।

अथर्ववेद में चार प्रकार की चिकित्सा विधि बतायी गयी है- **आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।**[१७] विश्व की समस्त चिकित्सा पद्धतियाँ इन्हीं चार में अन्तर्भूत हो जाती हैं।

(क) **आथर्वणी चिकित्सा** - अथर्वा शान्तियुक्त चिकित्सा यौगिक चिकित्सा। इसमें ध्यान, चिन्तन, मनन, मन्त्र, जप, आश्वासन एवं मनोनियन्त्रण के द्वारा प्राणशक्ति एवं मनोशक्ति की वृद्धि कर रोगों का नाश किया जाता है। यथा-

आश्वासन-चिकित्सा - इसमें बिना औषध के केवल आश्वासन द्वारा मानसिक चिकित्सा की जाती है। "**वातात्ते प्राणमविदं सूर्याच्चक्षुरहं तव। यत्ते मनस्त्वयि तद्धारयामि सं वित्स्वाङ्गैर्वद जिह्वयालपन्॥**[१८]

अर्थात् हे रोगी! मैंने वायु से तेरा प्राण प्राप्त कर लिया है, मैंने सूर्य से तेरी आँख प्राप्त कर ली है। जो तेरा मन है, उसे तुझमें ही धृत करता हूँ। तू अङ्गों से संवेदन कर, जिह्वा से आलाप करता हुआ बोल।

हस्ताभिमर्श-चिकित्सा - इसमें वाणी के प्रयोग के साथ पीड़ित अङ्ग को हाथ से स्पर्श भी किया जाता है। **हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी। अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि॥**[१९]

अङ्गुलिरूप दश शाखाओं वाले दोनों हाथों के प्रयोग की अपेक्षा जिह्वा वाणी को पहले प्रेरित करनेवाली हो। आरोग्यकारक उन दोनों हाथों से तुझे हम स्पर्श करते हैं।

---

[१७] अथर्ववेद ११.४.१६

[१८] अथर्ववेद ८.२.३ अन्य द्रष्टव्य- ८.१,२;३.११.२ तथा ५.३०.९

[१९] अथर्ववेद ४.१३.७ द्रष्टव्य- ४.१३.६,७

(ख) आङ्गिरसी चिकित्सा - आयुर्वेद के अनुसार मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय ये ६ रस होते हैं। शरीर में इनकी वृद्धि या ह्रास से रोगोत्पत्ति होती है। इसमें वनस्पति, वृक्ष, फलों रसों व भोजन आदि के द्वारा षड्रसों की पूर्ति कर जो चिकित्सा की जाती है, वह आङ्गिरसी चिकित्सा कहलती है। कायाकल्प रसायन विद्या व रसौषधियाँ भी इसी के अन्तर्गत आती है।

(ग) दैवी चिकित्सा - अग्नि, जल, वायु, आकाश, पृथिवी, सूर्य, चन्द्र, यज्ञ, प्राणायाम, आसन आदि चिकित्साएं दैवी चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं। यथा-

जल-चिकित्सा - आप: में अमृत व रोग नाशक शक्ति है। "**अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजम्। अपामुत प्रशस्तिभिरश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः॥**[20]

सूक्ष्म व स्थूल आप:= जलों में, मध्य में अमरणशील पदार्थ है जलों में रोग नाशक ओषधि भी है तथा आप: तत्त्वों की प्रभा विशेष के द्वारा, हे सूर्य आप सब वेग व बल से युक्त होते हो। तथा हे सूर्य की रश्मियों आप भी गति से युक्त होती हो।[21]

सूर्यचन्द्रकिरण-चिकित्सा – अथर्ववेद में सूर्यकिरणों द्वारा हृदय-रोग तथा कामला रोग की चिकित्सा का वर्णन है। **अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते। गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥**[22]

हे रोगों से पीड़ित मनुष्य तेरे हृदय रोग "हृदयं द्योतयति संतापयति" तथा चित्ताकर्षको व्याधि: हरणशीलो रोग:" पीलिया रोग व

[20] अथर्ववेद १.४-६;

[21] अथर्ववेद १.३३; ३.७.५; ३.१३; ६.२४,५७; ७.८९; १०.५.२४; १९.२।

[22] अथर्ववेद १.२२.१

उससे सम्बन्धित हरित् वर्ण। ये दोनों प्रकार के रोग सूर्य को लक्षित करे, रश्मियों के साथ सूर्य को ही प्राप्त हो जावे। जिससे तेरे ये दोनों रोग ठीक हो जावें। उगते हुए सूर्य की लाल वर्ण की किरणों के उस रक्त वर्ण से चारों ओर से आच्छादित करते हैं। उगते हुए सूर्य की रक्त वर्णीय किरणों से हृदय रोग व कामला रोग को दूर करने का विधान किया गया है।

परि॑ त्वा॒ रोहि॑तै॒र्वर्णै॑र्दीर्घायु॒त्वाय॑ दध्मसि। यथा॒यम॑र॒पा अस॒दथो॒ अह॑रितो॒ भुव॑त् ॥२॥

हे रोगी तुझे लम्बी आयु की प्राप्ति हेतु उगते हुए सूर्य की लाल रङ्ग की किरणों से धारण करते हैं, पुष्ट करते हैं। जिससे कि यह रोगी मानसिक पापों=ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, मोह आदि व शारीरिक पापों रोगों=हृदय रोग, पीलिया रोग आदि से रहित हो जाए, निरोग हो जाए तथा पीलिया रोग से सम्बन्धित, हरित रङ्ग से रहित भी हो जाए।

इसी प्रकार अन्यत्र भी सूर्य और चन्द्रमा की किरणों द्वारा गण्डमाला की चिकित्सा का विधान है। जिसमें विशेषतः उदयकालीन सूर्य के द्वारा शिरोरोग, कर्णरोग, चक्षुरोग, हृदयरोग तथा ज्वर आदि रोगों के विनाश का वर्णन है।[२३]

यज्ञीय-चिकित्सा- यज्ञ में आहुत कीटाणु नाशक औषधियां सूक्ष्म कणों (ऊर्जा गैसों) में परिवर्तित हो श्वांस द्वारा शरीर में प्रवेश कर अतिशीघ्र कीटाणुओं का नाश कर देती है।[२४] प्रमाण हेतु यथा –

"**इ॒दं ह॒विर्या॑तु॒धाना॑न् न॒दी फेन॑मि॒वा व॑हत्। य इ॒दं स्त्री पुमा॒नक॑रि॒ह स स्तु॑वता॒ं जन॑ः ॥**[२५]

---

[२३] अथर्ववेद ९.८

[२४] सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्। चरकविमानस्थान ३.१५॥

[२५] अथर्ववेद ११.८.

अर्थात् हम यजमानों द्वारा अग्नि आदि देवों को दी गई रोगनाशक औषधि रूपी यज्ञीय हवि हानिकारक रोगाणुओं वायरसों को अग्नि इन्द्रादि (जीवनीय शक्ति) की ओर आकर्षित करे, खींच लाये। जिस प्रकार नदी झाग को बहा लाती है। ताकि जीवनीय शक्ति इन वायरसों (रोगों) को नष्ट कर देवे। इससे सिद्ध होता है कि छिपे हुये व प्रकटित वायरसों को यज्ञीय ऊर्जा आकर्षित कर जीवनीय शक्ति के साथ मिलकर नष्ट कर देता है । इस मन्त्र में सभी प्रकार के वायरसों को यज्ञीय अग्नि द्वारा नष्ट करने का वर्णन है।

अन्यच्च यज्ञीय अग्नि से विषाणुओं के विनाश की वैज्ञानिक प्रक्रिया बताते हुये कहा गया है।

परा॑ शृणीहि॒ तप॑सा यातु॒धाना॒न्परा॑ग्ने॒ रक्षो॒ हर॑सा शृणीहि।
परा॒र्चिषा॒ मूर॑देवाञ्छृणीहि॒ परा॑सु॒तृपः॒ शोशु॑चतः शृणीहि॥[२६]

अर्थात् हे यज्ञीय अग्नि! यातुधान को अपने तेज से विनाश कर। राक्षस रूपी यातुधान को हरणशील रश्मियों से विनाश कर। अपनी दीप्त ज्वालाओं से मारणरूपी कर्म में संलग्न विषाणुओं को मारणरूपी कर्म से हटा कर नष्ट कीजिये। प्राणों को लेकर ही तृप्त होने वाले तथा अत्यधिक दीप्ति (ऊर्जा) से युक्त इन यातुधानों को आप पूर्ण रूप से नष्ट कीजिये।

इसी प्रकार अनेकत्र हवि द्वारा अज्ञात रोग, राजयक्ष्मा तथा ग्राहि (वातव्याधि) का दूरीकरण एवं शत वर्ष आयु की प्राप्ति वर्णित है।

प्राणायाम-चिकित्सा-

वायु को विश्वभेषज कहा है। "**आ वा॑त वाहि भेष॒जं वि वा॑त वाहि॒ यद्रपः॑। त्वं हि वि॑श्वभेषज दे॒वानां॑ दू॒त ईय॑से॥**[२७] अर्थात् हे शुद्ध वायु

---

[२६] अथर्ववेद ८.३.१३

[२७] अथर्ववेद ४.१३.३

देवता आप प्राणायाम आदि द्वारा हमारे शरीर में औषधि को लाओ व बाहर निकलते हुए दोषों को बाहर कर दो। क्योंकि आप सम्पूर्ण औषधि हैं, चिकित्सा हैं व आप देवताओं के दूत भी हैं। उनको यथाविधि तत्वों को पहुंचाते हैं। वस्तुतः बाहर से नासिका द्वारा फुप्फुस के अन्दर आनेवाला वायु शरीर को बल प्रदान करता है तथा अन्दर से बाहर जानेवाला वायु शरीरस्थ मल को बाहर निकालता है। अतः वायु को सम्पूर्ण चिकित्सा कहा है।

अथर्ववेद में सम्पूर्ण २६ मन्त्रों का प्राण-सूक्त है[२८], जिसमें प्राण की महिमा प्रतिपादित की गयी है। अग्नि, जल, वायु, सूर्य, अन्न, ओषधि-वनस्पति आदि को अथर्ववेद में प्राण के स्रोत कहा गया है। महान् प्राण के भेदों प्राण, अपान, व्यान आदि की भी चर्चा है।

(घ) मनुष्यजा चिकित्सा - इसमें मनुष्यों द्वारा निर्मित चूर्ण, वटी (गोली), अवलेह, भस्म, कल्प, आसव एवं शल्यचिकित्सा आती है। इन चारों प्रकार की चिकित्साओं से सम्बन्धित अथर्ववेद में हजारों मन्त्र हैं एवं लगभग २७५ औषधियों का वर्णन है। अथर्ववेद के ओषधि-सूक्त में किसी विशेष ओषधि का नाम न लेकर सामान्यतः औषधियों के रूप-रङ्ग, आकार-प्रकार आदि का वर्णन किया गया है। ओषधियाँ चमकीली, भूरी, लाल, चितकबरी, नीली, काली कई रङ्गों की होती हैं। जड़, शाखा, तने आदि की दृष्टि से भी इनके भेद बताये गये हैं। जीवला, नघारिषा, जीवन्ती, अरुन्धती, उन्नयन्ती, मधुमती, तीक्ष्णश्रृङ्ग्यः, विषदूषणीः, बलासनाशनीः, आङ्गिरसीः, पयस्वतीः, विश्वभेषजीः, पुष्पवतीः, प्रसूमतीः, फलिनीः, अफलाः आदि ओषधियों के विशेषण कहे गये हैं। कुछ

---

[२८] अथर्ववेद ११.४

ओषधियों का विशेष वर्णन प्राप्त होता है- अपामार्ग[२९], कुष्ठ[३०], पिप्पली[३१], पृश्निपर्णी[३२], रोहणी[३३], अजशृङ्गी[३४], केशवर्धनी[३५]

रोगों के अनन्त भेद होने पर भी चिकित्सा प्रसङ्ग में कुछ रोगों की चिकित्सा प्राप्त होती है। यथा- आस्राव[३६], उन्मत्तता[३७], कास (खाँसी)[३८], क्लीवत्व (नपुंसकता)[३९], गर्भदोष[४०], गण्डमाला[४१], ज्वर[४२], प्रसवरोध[४३], बलास (कफरोग)[४४], मूत्रकृच्छ्र[४५], केशरोग[४६], नेत्ररोग[४७], रुधिरस्राव[४८],

---

[२९] अथर्ववेद ४.१७-१९; ७.६५

[३०] अथर्ववेद ५.४; ६.९५; १९.३९

[३१] अथर्ववेद ६.१०९

[३२] अथर्ववेद २.२५

[३३] अथर्ववेद ४.१२

[३४] अथर्ववेद ४.३७

[३५] अथर्ववेद ६.२१, १३६, १३७

[३६] अथर्ववेद २.३

[३७] अथर्ववेद ६.१११

[३८] अथर्ववेद ६.१०५

[३९] अथर्ववेद ६.१३८

[४०] अथर्ववेद ६.१७; ८.६; २०.९६

[४१] अथर्ववेद ६.२५, ८३, ७.७४

[४२] अथर्ववेद १.२५; ५.२२; ६.२०; ७.११६

[४३] अथर्ववेद १.११

[४४] अथर्ववेद ६.१६

[४५] अथर्ववेद १.३

[४६] अथर्ववेद ६.२१, १३६, १३७

[४७] अथर्ववेद ४.९; ६.१६; १९.४५

[४८] अथर्ववेद १.१७

वृषरोग[४९], श्वेतकुष्ठ[५०], हृदयरोग[५१], कामला[५२], क्षेत्रियरोग[५३], विष[५४], सर्पविष[५५]।

शल्यचिकित्सा - शल् हिंसायां धातुस्तस्माच्छल्यं, शल् रुजायां वा धातुस्तस्मादपि शल्यं सिद्ध्यति। यत्किञ्चिदाबाधकरं शरीरे तत्सर्वमेव प्रवदन्ति शल्यम्" विविध प्रकार के जो गाँठ फोड़े, घाव, मृतगर्भ आदि जो कुछ भी शरीर में बाध करने वाले, जिनको यन्त्रादि के द्वारा निकालना वह सभी शल्य क्रिया के हैं। वेद में शल्य क्रिया से सम्बन्धित अनेकों मन्त्रों द्वारा विधियों का वर्णन प्राप्त होता है । सोना, चांदी, लोहा, तांबा, पीतल, शीसक (नाग) जतु (राँगा) इन सात धातुओं से यंत्र बनाकर विष बेल, अर्श, भगन्दर, कर्कट आदि रोगों में दाह कर्म करना, आधुनिक सर्जरी में प्लास्टिक सर्जरी, अङ्ग प्रत्यारोपण, क्षार कर्म, सूत्र कर्म आदि को शल्य कर्म कहते हैं।

तत्र, शल्यं नाम विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोहलोष्टास्थि-बालनखपूयास्रावदुष्टव्रणान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं, यन्त्रशस्त्र क्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थञ्च ॥[५६]

आयुर्वेद के जिस अङ्ग में अनेक प्रकार के तृण (घास), काष्ठ (लकड़ी), पत्थर, धूलि के कण, लौह, मिट्टी, हड्डी, केश, नाखून, पूय

---

[४९] अथर्ववेद ५.१६

[५०] अथर्ववेद १.२३-२४

[५१] अथर्ववेद १.२२

[५२] अथर्ववेद १.२२

[५३] अथर्ववेद २.८

[५४] अथर्ववेद ४.६, ७; ६.१००

[५५] अथर्ववेद ५.१३; ६.१२; ७.८८; १०.४

[५६] सुश्रुत सू० १.९

(मवाद), स्त्राव, दूषित व्रण, अन्तःशल्य तथा गर्भ (मृतगर्भ) शल्य आदि को निकालने का ज्ञान, यन्त्र, शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म करने का ज्ञान तथा व्रणों का आम, पच्यमान और पक्व आदि का निश्चय किया जाता हो उसे शल्यतन्त्र कहते हैं। अथर्ववेद में शल्य चिकित्सा पद्धतियाँ भी उपलब्ध होती हैं। यथा-

यदस्य हृतं विहृतं यत्पराभृतमात्मनो जग्धं यतमत्पिशाचैः। तदग्ने विद्वान्पुनरा भर त्वं शरीरे मांसमसुमेरयामः॥[५७]

अर्थात् इसका जो अङ्ग या जो मांस पिशाचों द्वारा हर लिया गया है, विविध स्थानों से हरा गया है, जो उखाड़ दिया गया है, जो खा लिया गया है, उस अङ्ग या मांस को हे चिकित्सक विद्वान् आप फिर से भर दे, हमारे शरीर में मांस को और प्राण को प्रेरित कर दें।

इस मन्त्र में रुके हुए मूत्र को निकालने के लिए मूत्रनाड़ी को शल्य क्रिया द्वारा खोलने का वर्णन है।

प्र ते भिनद्मि मेहनं वर्त्रं वेशन्त्या इव। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम्॥[५८]

अर्थात् हे मूत्र रोगी तेरी मूत्रेन्द्रिय नाड़ी को रुके हुए मूत्र को निकालने के लिए मैं चिकित्सक यन्त्र द्वारा खोलता हूँ, जैसे अधिक मात्रा में एकत्रित हुए जल को उस जल बहने के मार्ग को विदारण द्वारा बना लेते हैं, खोल देते हैं, इस प्रकार यन्त्र द्वारा मूत्र नाड़ी को खोलने की चिकित्सा से हे मूत्र रोगी तेरा सारा का सारा मूत्र अपान प्राण की साम्यता से बलपूर्वक बाहर निकल जाए।

---

[५७] अथर्ववेद ५.२९.५

[५८] अथर्ववेद १.३.७

विषितं ते वस्तिबिलं समुद्रस्योदधेरिव। एवा ते मूत्रं मुच्यतां बहिर्बालिति सर्वकम् ॥[५९]

अर्थात् हे मूत्र रोगी! तेरे मूत्र मार्ग को यन्त्र व औषधि से रुके हुए मूत्र को निकालने के लिये खोल दिया है; जैसे समुद्र में आये तूफान ने समुद्र का मार्ग जल को अन्यत्र जाने के लिए खोल दिया है, इस प्रकार यन्त्र व सरकण्डा औषधि द्वारा मूत्र नाड़ी को खोलने की चिकित्सा से हे मूत्र रोगी! तेरा रुका हुआ सारा मूत्र अपान प्राण की साम्यता से बलपूर्वक बाहर निकल जाए।

इन मन्त्रों में मूत्र के रुक जाने पर यन्त्र द्वारा मूत्रमार्ग का उद्घाटन व शल्य चिकित्सा का भी वर्णन किया है। जिससे रुका हुआ सारा मूत्र बाहर निकल जाये। व शरीर के लिये हानिकारक न हो। मूत्रमार्ग मे स्वर्ण, रजत, शीशा आदि की शलाकाओं का प्रवेश मूत्र निस्सारण व मार्ग शुद्धि हेतु आयुर्वेद मे वर्णित है, जिसको उत्तर वस्ति कहते हैं। आजकल रबर के कैथीटर का प्रयोग किया जाता है। कुछ हठ योगियों के अनुसार सुवर्ण आदि की शलाका का वे मूत्र मार्ग मे प्रवेश करा वायु के आकर्षण द्वारा उस शलाका से जल, दुग्ध, घृत आदि का आकर्षण मूत्राशय तक कर लेते हैं। जिससे मूत्राशय व किडनी से सम्बन्धी रोग नही होते व वीर्य सिद्धि की प्राप्ति होकर व्यक्ति ऊर्ध्वरेता बन जाता है।

अस्तु संक्षेपतः कह सकते हैं कि जिन-जिन रोगों के नाम वेद में आए हैं, उन सबको विभिन्न भागों में विभक्त किया है एवं इनकी वैदिक चिकित्सा सात प्रकारों में विभक्त है। १- मन्त्रों के द्वारा वैद्युत चिकित्सा। २- शङ्खद्रव्य आदि मणियों के द्वारा स्नायुचिकित्सा। ३- सुवर्ण, ताम्र आदि

---

[५९] अथर्ववेद १.३.८

अग्निधातु द्वारा रक्षश्चिकित्सा। अग्निद्वारा भी अग्निचिकित्सा। ४- सूर्य्यरश्मि से हृदय रोग दूर होता है। ५- जल चिकित्सा से भी रोग दूर होते हैं। ६- गूलर, विभीतक आदि वृक्षों के पञ्चाङ्ग लेकर उनके स्वरस से औषधि चिकित्सा करते हैं। ७- पिप्पली से क्षिप्त और अतिविद्ध रोग दूर होता है।

पिप्पली क्षिप्तभेषज्यूतातिविद्धभेषजी।
ता देवाः समकल्पयन् इयं जीवितवा अलम्"।
पिप्पल्यः समवदन्तायतीर्जननादधि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः॥[६०]

[६०] अथर्ववेद ६.१०९.१-२

राजनैतिकव्यवहाराणां स्रोतः "अथर्ववेदः"

परिणीता शर्मा बरुआ[1]

वेद एव भारतीयज्ञानपरम्परायाः मूलस्रोतो वर्तते। भारतीयसमाज-व्यवस्थायां लोके वा वेदाः महत्त्वपूर्णं स्थानमलङ्कुर्वन्ति। ज्ञानार्थकेन विद् धातुना निष्पन्नो वेदशब्दः, इष्टस्य प्राप्तये अनिष्टस्य च परिहाराय अलौकिकमुपायं वेदयति। मन्त्र-ब्राह्मण-आरण्यक-उपनिषद्-वेदाङ्गानां च समाहारभूताः ते इमे वेदाश्चत्वारः। तत्र च पद्यमयी ऋग्, गद्यमयं यजुष्, गद्यपद्यमयञ्च साम, शान्तिकपौष्टिकमन्त्राणां समूहश्च अथर्ववेद इत्युच्यते।

अथर्वनामकर्षिणा दृष्टः असौ अथर्ववेदः वेदेषु अन्यतमां विशिष्टतां गृह्णाति। ऋग्वेदादयः त्रयोऽपि वेदाः आमुष्मिकफलप्रदातारः सन्ति, परन्तु अयं अथर्ववेदः आमुष्मिकफलैस्सह ऐहिकमपि फलं प्रयच्छति। जीवनं सुखसमन्वितं कर्तुं येषां साधनानामपेक्षा भवति, तेषां सिद्ध्यर्थम् एतस्मिन् वेदे विविधानामनुष्ठानानां विधानं विहितं वर्तते। पतञ्जलिना यद्यप्यस्य वेदस्य नवशाखास्सन्ति इति निगदितम्, साम्प्रतं तेषु पैप्पलाद-शौनकसंज्ञके द्वे एव शाखे उपलभ्येते। प्रचलिता अथर्वसंहिता,

[1] **शोधच्छात्रा, वेदविभागः श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली**

शौनकशाखान्तर्गता पैप्पलादशाखासंहिता च अनतिचिरेणैव मुद्रिते स्तः।

लोके जनैः दैनिकजीवने अथवा विशिष्टानुष्ठाने ये व्यवहाराः परिपाल्यन्ते ते एव लोकव्यवहारपदेन अभिधीयन्ते। लोक इत्युक्ते संस्कृतवाङ्मयेषु संसारः, विश्वः, देशः, जगत्, भूमिः, जीवानां वसतिः, भूलोकः, भूभागः, तत्र निवसन्तो वा जनाः सामान्यतः लोकशब्देन अवबुद्ध्यते। व्यवहारशब्दश्च **वि-अव**-इत्युपसर्गाभ्यां **हृञ्**-हरणे इत्यस्माद्धातोः व्यवहारशब्दः निष्पन्नो भवति। अमरकोषे तु व्यवहारशब्दो विवादार्थक इत्युच्यते- **"विवादो व्यवहारः स्याद्"**[२] परन्तु लोकव्यवहारादिषु पदेषु व्यवहारशब्देन काचिदेका लोकादिभिः क्रियमाणा क्रिया सामान्येन सूच्यते। तत्र च याज्ञवल्क्यस्मृतौ व्यवहाराध्याये सन्देहनिवारणार्थकः व्यवहारशब्द इत्युच्यते। उक्तं च -

"**वि-नानार्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते। नानासन्देहहरणात् व्यवहार इति स्थितिः॥**"[३] इति।

तदेवं सत्परिणामदायिनी क्रिया एव व्यवहारपदवाच्या स्यात्, असत्फलदायिनी क्रिया तु अवहारपदेन उच्यते, वि-उपसर्गात् तस्य विपरीतार्थकस्तु सद्व्यवहार एव स्यात्। निरुक्तकारोऽपि "वि" इत्युपसर्गस्य विपरीतार्थं ध्वनयति, तत्रोच्यते- "**व्यपेत्येतस्य प्रातिलोम्यम्**" इति। तदेतेन प्रकारेण उल्लिखिताः व्यवहारपदस्य अर्थः जनैः परिपालनीयम् अर्थमेव सूचयति।

मानवजीवनस्य आदर्शरूपं सर्वतोभावेन वेदेन एव सम्बद्धम्, वेदातिरिच्य मानवीयमूल्यानां सङ्कल्पनं न सम्भवति। मानवीयव्यवहारे परमावश्यकानां व्यक्तिगोष्ठीपरिवारलोकव्यवहारसमाजव्यापारराष्ट्रादीनां

---

[२]अमरकोशः, पदार्थविभागः

[३]याज्ञवल्क्यस्मृतिः, व्यवहारध्यायः – प्रथमश्लोकस्य वासुदेवशर्मणः टिप्पण्याम्।

प्रमुखविषयाणां मूलस्रोतांसि वेदाः एव। लोके जनैः दैनिकजीवने अथवा विशिष्टानुष्ठाने ये व्यवहाराः परिपाल्यन्ते ते एव लोकव्यवहाराः इति पूर्वमेवोक्तम्। मनुष्याः स्वजीवने विशिष्टानुष्ठाने च यान् प्रयोगान् कुर्वन्ति, तेषाम् उल्लेखो वेदे कृतो वर्तते यथा दैनिकजीवने सत्यभाषणस्य प्रेरको वाक्यः- **सत्यं वद**[४] इति, प्रत्येकं कार्यं धर्माचरणपूर्वकं करणीयम् इति व्यवहारस्य च स्रोतो वेदेषु प्राप्यते- **धर्मं चर**[५] इति। तदेतानि सामान्यलोकव्यवहाराणां कानिचन स्रोतांसि एवं सन्ति - **स वै सत्यमेव वदेत्**[६]। तदितरेऽप्येतादृशाः व्यवहाराः लोके प्रचलिताः सन्ति येषाम् उल्लेखः स्पष्टरूपेण मन्त्रभागेषु ब्राह्मणादिषु च ग्रन्थेषूपलभ्यते। ननु अथर्ववेदसम्बद्धानां केषाञ्चन राजनैतिक-सामान्यविशिष्टलोकव्यवहाराणाम् अथ च तेषां वेदमूलकतां सोदाहरणं अग्रे प्रतिपादयिष्यते।

राजनैतिकलोकव्यवहाराः

राजनीति इति पदं द्वयोः शब्दयोः संयोगेन सिध्यति- **राज+नीतिः**, अर्थात् नीतिविशिष्टैः शासनक्रिया उद्देश्यविशिष्टस्य प्राप्तिर्वा राजनीतिः इति कथ्यते। राजनैतिकविचाराणम् उन्नयनम्, विधीनां निर्माणम्, राष्ट्र-विरोधीनां विरुद्धं युद्धम्, विधि-शक्तीनां प्रयोगः इत्यादयः सर्वा अपि व्यवस्थाः राजनीतिशब्दवाच्यार्थे अन्तर्भवन्ति। राजनीतेः इतिहासः अतीव प्राचीनतमः। राजनीतीनां वर्णनं वैदिककालात् प्रारभ्य रामायणे, महाभारते, महाकाव्येषु, नाटकेषु, आधुनिककाव्येषु च दृश्यते।

सामान्यतया **राजनीतिशास्त्रम्** इति विषयः राज्यशासनस्य विचार

---

[४] तै. उ. शिक्षावल्ली ११

[५] तै. उ. शिक्षावल्ली ११

[६] श. ब्रा. १.१.१

एव भवति। कथं राजा स्वशासनविधिद्वारा स्वदेशं राज्यं वा समुन्नयति, प्रजानां संरक्षणं परिपालनं वा करोति, एतत् सर्वं राजनीतिः एव उच्यते। मध्यकाले भारतवर्षे वैदेशिकाः शत्रवः आक्रमणं कृतवन्तः, अनेन अस्माकं देशस्य सम्पूर्णा व्यवस्था जर्जरिता। तस्य प्रभावः अस्माकं सामाजिकव्यवस्थासु, राजनैतिकव्यवस्थास्वपि सहजतया दृश्यते। तथापि तात्कालिकाः भारतस्य शासकाः संरक्षकाः महाराजानः स्वशौर्येण कौशलेन च नीतिसम्बन्धव्यवस्थामाध्यमेन शत्रुभिः तेषां धूर्तनीतिभिश्च युद्धं कृतवन्तः। अथ च केनचित् प्रकारेण अद्यापि अस्माकं संस्कृतिः परम्परा विविध-व्यवहाररूपेण सूक्ष्मतया निःस्वसति। परतन्त्रतायामपि स्वपरम्परा संरक्षणाय यानि प्रयत्नानि विहितानि, वस्तुतः तान्यपि अपि राजनीतिविषयेष्वेव अन्तर्भवन्ति।

राजनीतिविषये व्यवस्थितविचाराः वेदेषु प्राप्यन्ते। पूर्ववर्त्तिनः आचार्याः मनुरिव अन्येस्मृतिकाराः राजनैतिकचिन्तकाः काले काले वेदानां महत्त्वस्य आधारेण राज्यशासनाय, जनहिताय च स्वविचारधाराम् अभिव्यञ्जयन्तः सन्ति। वैदिककालात् आरभ्य वर्तमानकालपर्यन्तं केवलं सुसङ्गठितराजनैतिकशक्तिः एव देशस्य संरक्षणं कुर्वती अस्ति। वर्तमानकाले न्यायपालिका, विधिः, नगरपालिका, कार्यपालिका इत्यादयः ये विभागाः सन्ति, एते सर्वे वेदाधारितायाः व्यवस्थायाः एव अनुकृतयः सन्ति। राष्ट्रजनानाम् प्रजानाम् धर्माचरणम्, दुष्टानां विनाशः, राष्ट्रस्य श्रेष्ठता, दण्डव्यवस्थादिकं सर्वं वेदप्रेरितमेवास्ति। वेदेषु शत्रुभिस्सह युद्धम्, राजनैतिक-व्यवस्था, शत्रुपरिहारमार्गाः, विविधाः शासनव्यवस्थाः, संस्थानानि, सिद्धान्ताः च विशेषेण वर्णिताः सन्ति।

तत्र अथर्ववेदे एव उच्यते यत् नृपः सामान्यजनैः निर्वाचितः भवेदिति। अर्थात्, साम्प्रतं प्रचलिता गणतन्त्र इत्यभिधायिकायाः

राजव्यवस्थाया अपि वेदमूलकत्त्वं मन्त्रेणानेन सिद्ध्यति। सामान्यजनैः निर्वाचितः नृपः यदा शासनव्यवस्थां गृह्णातुं आयाति, तदा स प्रार्थ्यते यत्, हे राजन्! त्वया राष्ट्रः पुनः प्राप्तः। प्रजाः त्वां राजारूपेण वृणताम्। त्वं च पञ्चदिशः रक्षस्व (चतस्त्रो प्राच्यादिदिशः मध्यभागश्च, सर्वाः आहृत्य पञ्चदिशः)। राष्ट्रस्य धनं सर्वेषां समुन्नतये सर्वेषु विभागेषु विभज्य सर्वोच्चपदम् अलङ्कुरु इति। मन्त्रः-

त्वां विशो तृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो वि भजा वसूनि॥[७]

एतादृश्याः वैदिककालिक - राजनैतिकव्यवस्थायाः उल्लेखः अथर्ववेदस्य अनेकेषु सूक्तेषु बहुष्वपि मन्त्रेषु प्राप्यते। तद्यथा-

१. कस्यचित् दलस्य अधिकारी देशस्य मूलनिवासी वा बलवान् तेजस्वी च निश्चप्रचमेव भवेत्। तदनेन तस्य समूहस्य अन्ये जनाः अधिकारिणा प्रणितान् सूचितान् च सिद्धान्तान् सादरं परिपालयिष्यन्ति, अन्ये कर्णेजपाः जनाः तेभ्यः दूरं तिष्ठन्ति अथवा शासकस्य तन्त्रे तिष्ठन्ति। अस्मिन् सन्दर्भे अथर्ववेदस्य सप्तमे सूक्ते उच्यते यत्, राजा अग्निः इव तेजस्वी यशस्वी च भूयादिति। तेन दस्यवः तस्मात् दूरेण तिष्ठन्ति। तथा च सः दुष्टजनान् बद्ध्वा दण्डयित्वा च जनान् रञ्जयेत् इत्युच्यते-

स्तुवानमग्न आ वह यातुधानं किमीदिनम् ।
त्वं हि देव वन्दितो हन्ता दस्योर्बभूविथ ॥[८]

२. देशस्य समुन्नतिः विकासश्च तस्य देशस्य नागरिकैः प्रदत्तेन कर-धनेन निर्धार्यते। अर्थात् तस्य देशस्य समुन्नतिः प्रजाजनेभ्यः प्राप्तेन धनेन एव भवति। अथर्ववेदेऽपि उच्यते यत् “राजा प्रजानां करग्रहणं

[७] अथर्ववेद ३.४.२

[८] अथर्ववेद १.७.१

कुर्यादि"ति (व्यंग्येन) उल्लेखो वर्तते। तत्र अग्निः प्रार्थ्यते यत् सः स्रुवापात्रेण निश्चितपरिमाणात्मिकां आज्याहुतिं ग्रहणं करोत्विति, पुनश्च तेन प्रसन्नो भुत्वा दुष्टान् विलापयत्विति। अत्र निश्चितपरिमाणात्मकं घृतं-निश्चितपरिमाणात्मकस्य करस्य (टैक्स) इत्यस्य सूचकं वर्तते। तेन करेण राजा अथवा सर्वकारोऽपि प्रसन्नो भवेत्। पुनश्च दुष्टशक्तिभ्यः करप्रदतृणां प्रजानां रक्षा कुर्यादिति व्यंग्यार्थो भावार्थो वा। तद्यथा-

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन्।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातूधानान् वि लापय॥[९]

३. नृपः प्रजानां विषये सर्वदा चिन्तयेत्। यदि जनाः सुखं, शान्तिं, समृद्धिं च इच्छन्ति, तैस्सह जीवनं यापयन्ति तर्हि तस्य राज्यस्य उन्नतिरपि शीघ्रमेव भवति। राज्ञा दुष्टाः दण्डिताः स्युः, सत्कर्तारः विद्वांसश्च पुरस्कृताः भवेयुः। एतेन प्रजाजनेषु उत्साहो वर्धते। समीपस्थेभ्यः राज्येभ्यः जनाः समागत्य तस्मिन् समुन्नते राष्ट्रे सम्मिलितुम् इच्छन्ति। ते स्वयमेव अधर्माचारेषु लिप्तान् स्वशासकान् परित्यज्य समुन्नतं राष्ट्रं प्रति स्वात्मानं समर्पयन्ति। प्रजाजनैः त्यक्ताः अधर्माचारिणः ते दुष्टाः शासकाः अपि समुन्नतं राष्ट्रं प्रति स्वाभिधानम् उच्चारयन्तः स्वात्मानं समर्पयन्ति। इयं खलु राजनीतिः अथर्ववेदे वर्णिता, येन मार्गेण विना युद्धमेव विजयो निश्चितं भवति।

वि लपन्तु यातुधाना अत्त्रिणो ये किमीदिनः।
अथेदमग्ने नो हविरिन्द्रश्च प्रति हर्यतम्॥[१०]
अग्नि पूर्व आ रभतां प्रेन्द्रो नुदतु बाहुमान्।
ब्रबीतु सर्वो यातुमानयमस्मीत्येत्य॥[११]

---

[९] अथर्ववेद १.७.२

[१०] अथर्ववेद १.७.३

४. समाजे शिक्षायाः महत्त्वं किम्? इति विषये जनाः साम्प्रतम् अनुभवन्ति। ते हि शिक्षायाः महत्त्वं जनेषु क्रमशः वर्धते। स्वयं शिक्षिताः सन्तोऽपि अन्यानपि शिक्षाग्रहणार्थं प्रेरयन्ति। एतस्याः आग्रहपूर्तये विद्यासंस्थानकेन्द्राणां निर्माणमपि सर्वत्र सर्वकारेण विविधप्रकारैः क्रियते। वैदिककाले शिक्षा सर्वजनग्राह्या अनिवार्यतत्त्वरूपा सम्पदा आसीत् इति तात्कालिकाः शिक्षाग्रन्थाः द्योतयन्ति। अपि च राजपुरुषाणामपि (क्षत्रियशासकानाम्) इदं कर्त्तव्यमासीत् यत् राज्ये सर्वास्वपि प्रजासु शिक्षायाः लाभः साक्षात् भवेदिति। तदेवोच्यते-

पश्याम ते वीर्यं जातवेदः प्र णो ब्रूहि यातुधानान्नृचक्षः।
त्वया सर्वे परितप्ताः पुरस्तात्त आ यन्तु प्रब्रुवाणा उपेदम्॥[१२]

५. अपशक्तिभ्यः प्रजानां रक्षणम्, अपशक्तिमतां दुष्टानां कृते दण्डविधानं शासकस्य मुख्यकर्तव्यं वर्तते। राजा सर्वथा प्रजागणाः यथा इच्छन्ति, तथैव वार्तां दुष्टान् प्रति सूचयेत्। स च राजा सर्वथा प्रजाजनानां कार्ये नियुक्तो भवेच्च। प्रजानामेव प्रतिनिधित्वेन दुष्टान् दण्डयेत्। यदि दुष्टाः दस्यवः आतंकिनः वा स्वयमेव आत्मसमर्पणं पूर्वोक्तविधिना न कुर्वन्ति चेत् तान् दुष्टान् बद्ध्वा मृत्युदण्डेन दण्डयेत्। अथर्ववेदे अस्मिन् प्रसङ्गेऽपि उच्यते यत्-

आ रभस्व जातवेदोऽस्माकार्थाय जज्ञिषे।
दूतो नो अग्ने भूत्वा यातुधानान् वि लापय॥[१३]
त्वमग्ने यातुधानानुपबद्धाम् इह वह।
अथैषामिन्द्रो वज्रेणापि शीर्षाणि वृश्चतु॥[१४]

---

[११] अथर्ववेद १.७.४

[१२]अथर्ववेद १.७.५

[१३] अथर्ववेद १.७.६

६. शत्रुः दुष्टो वा कियान् अपि दोषी भवेत्, यदि सः स्वकीयान् पूर्वकृतान् दोषान् स्वीकृत्य क्षमां याचते तर्हि शासकः, राजा स्वामी वा तं क्षमति। प्रमुदितचित्तस्य स्वीकृतदोषस्य सम्यग् निरीक्षणं कृत्वा तं शरणागतं च शासकः स्वीकरोति। यदि वयमपि जीवने किमपि दुष्कृतं कुर्मः तर्हि तस्य क्षमायाचना कर्तव्या। एतेन पीड़ितजनस्य मनसि अस्माकं प्रति यः क्रोधः आसीत् सः नश्यति।

अथर्ववेदेऽपि उच्यते यत् यदा शत्रुः तस्य शासकस्य प्रभुत्वं स्वीकृत्य आत्मसमर्पणं करोति तदा शासकः कृतात्मसमर्पणस्य स्वागतं करोति। राजा तं साम-दाम-दण्डादिभिः वशीकरोति। राजा समुचितसमये शान्तस्वभावेन स्थितिं सम्पादयेत्। स्थितिं निरीक्ष्य शत्रुविनाशाय क्रोधमपि आचरेत्। अनेन कदाचित् कठिनतमसमस्यानामपि समाधानं हिंसां विना कर्तुं शक्यन्ते।

अयं स्तुवान आगमदिमं स्म प्रति हर्यत।
बृहस्पते वशे लब्ध्वाग्नीषोमाः वि विध्यतम्॥[१५]

७. अतीव हिंसकः मदोन्मत्तः पशुः अपि शान्तस्वभावप्रभावेण शान्तः भवति। कदाचित् दण्डेन यत् कार्यं सम्पादयितुं न शक्यते तत् प्रेम्णा वा स्नेहेन वा ऋजुमार्गेण सम्पाद्यते। क्रोधः मनुष्यस्य बृहत्तमः शत्रुः इति मन्यते। यस्मिन् स्थाने क्रोधं विनापि समस्यायाः समाधानं भवति, तत्र क्रोधस्य प्रदर्शनं विनैव शान्तरूपेण समस्यायाः समाधानं कुर्यादिति सामान्य व्यवहारः। अयं व्यवहारो न केवलं सामाजिकः अपि तु राजनीतिना अपि साक्षात् सम्बद्धो वर्तते।

[१४] अथर्ववेद १.७.७

[१५] अथर्ववेद १.८.२

अथर्ववेदे अधोलिखितेन मन्त्रमाध्यमेन उच्यते यत् शान्तः सौम्यस्वभावः राजा चतुरबुद्ध्या सहजतया अहिंसाचरणेन वशीकर्तुं समर्थः भवतीति। दुष्टजनानां सन्निधौ गत्वा स्वस्वभावेनापि राजा दुष्टानां मनसः दुष्टाभिप्रायं नाशयति, तेन दुष्टाः अपि विनष्टाः भवन्ति, अर्थात् ते सुजनाः भवन्ति।

यातुधानस्य सोमपं नयस्व च।
नि स्तुवानस्य पातय परमक्ष्युतावरम्॥[१६]

८. यस्य कस्यचित् देशस्य नेता, सेनापतिः, राजा वा तेजस्वी, प्रसिद्धः, महाबलः, बलवान् च बुद्धिमान् च भवेत्। यथा आवश्यककाले सः प्रच्छन्नान् आतङ्कवादिनः गृहीत्वा दण्डयितुं समर्थः भवेत्। अथर्ववेदेऽपि अस्मिन् सन्दर्भे उच्यते यत् केवलं बलवान् शक्तिशाली राजा एव गुप्तदुष्टान् छद्मशत्रून् वा ज्ञात्वा स्वनीत्यनुसारेण च तान् गृहीत्वा, दण्डयितुं समर्थो भवति।

यत्रैषामग्ने जनिमानि वेत्थ गुहा सतामत्रिणां जातवेदः।
तांस्त्वं ब्रह्मणा वावृधानो जह्येषां शततर्हमग्ने॥[१७]

९. वर्त्तमानकाले अनेके राष्ट्राः विविधनीतिभिः अन्तर्जातीय सभासु शत्रुराष्ट्रस्य अधिकारीगणान् मोहयन्ति। तत्र च राजनैतिकदृष्ट्या विविधप्रकारैः नीति-प्रलोभनादिभिः शत्रूणां मतिं भ्रामयन्तः पुनः तेषामेव शत्रूणां राष्ट्रं नाशयन्ति। ऋणादिभिः शत्रुराष्ट्रं वशी कुर्वन्तः तान् जयन्ति। तादृशी एव नीतिः अथर्ववेदेऽपि वर्णिता दृश्यते। तत्रापि इन्द्रदेवः प्रार्थ्यते यत्, सः रिपुगणान् सम्मोहयेत्, सम्मोह्य च अस्त्रविहीनं कुर्यात् अथ च मरुतादिभिः तान् नाशयेत् इति। तद्यथा-

---

[१६] अथर्ववेद १.८.३

[१७] अथर्ववेद १.८.४

इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा।
चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता॥[१८]

अत्रापि इदं ध्यातव्यं यत्, उपर्युक्तेषु सूक्तेषु अग्नि-इन्द्र-वरुण-मरुतादीनां देवतानां प्रार्थना क्रियते। तत्र प्रार्थनायां शत्रुणां विनाशाय देवगणाः प्रार्थ्यन्ते। यदि ते एव मन्त्रार्थाः गृह्यन्ते चेत् वेदानां साम्प्रतं का उपादेयता देवाराधनमतिरिच्य इति प्रश्नः वेदपिपठिसूनां पुरतः आयाति। परन्तु वेदाः खलु सर्वकालिकाः, परमात्मनः आनुगुण्यत्त्वादिति वेदज्ञबुधैः बहुधा गीतम्। अथ च तैः "अनेकार्थसम्पन्नाः वेदमन्त्राः व्यंग्येन मनुष्यान् विविधप्रकारैः उपदिशन्ति" इत्यपि निगदितम्। तर्हि, अत्र वेदमन्त्राणां वर्त्तमानसन्दर्भे का उपयोगिता? के तावत् व्यंग्यार्थाः भावार्थाः वा? किमनेन मनुष्यसमाजस्य उपकारः संभवति? इत्यादिप्रश्नानां निवारणार्थं अर्वाचीनव्याख्याकारैः ईश्वरप्रेरणया विविधपद्धतिभिः मन्त्राणां व्याख्या अपि विहिता।

तत्र पूर्वप्रदत्तेषु उदाहरणेषु अग्निः इति पदेन न केवलं भौतिकवह्निरेव गृह्यते, अपि तु अग्निसमाः तेजवन्तः विद्वान्सः अथवा तेजस्वीनः राजनीतिज्ञाः, राजकर्मेषु अग्रगण्याः मन्त्रिणोऽपि गृह्यन्ते। इन्द्रः इति न केवलं कथाप्रसिद्धा कश्चित् स्वर्गनामकस्थलस्य राजा, अपि तु तद्वत्सामर्थ्यशालिनः शत्रुविनाशकाः क्षत्रियकुलभूषणाः राजानः अपि गृह्यन्ते। अथापि सामरिकक्षेत्रेषु निपुणाः सैन्यपरिचालकाः सेनापतयः शूराः अपि इन्द्रपदेन ग्राह्याः। तत्र वर्तमानसन्दर्भे दस्यवः इत्युक्ते ये असामाजिकतत्त्वाः निष्कारणं जनभावनां दूषयन्ति, ये आतंकिनः राष्ट्रम् आयुधमाध्यमेन नाशयितुं प्रेरिताः दृश्यन्ते, ये वा दुष्टबुद्धिजीविनः

[१८] अथर्ववेद ३.१.६

समाजस्य अवनतिमभिलक्ष्य अपशिक्षण-भाषण-लेखनादिषु बौद्धिकक्षेत्रेषु कुकार्यं कुर्वन्ति, ते समेऽपि दस्युशब्दवाच्याः सन्ति। तेषां समेषां विनाशाय याः नीतयः परिपाल्यन्ते, तासां मूलस्रोतः अथर्ववेदे दृश्यत एव। अत्र तु राजनैतिकव्यवहाराणामुल्लेखः संकेतमात्रेण एव क्रियते। अथापि अनेकानि उदाहरणानि अथर्ववेदे प्राप्यन्ते। तदेतेन राजनैतिकव्यवहाराणाम् अथर्ववेदमूलकता सप्रमाणं सिद्ध्यति।

अथर्ववेद में प्राकृतिक चिकित्सा

कुशुम[1]

शोध-सारांश

स्वस्थ जीवन जीने के लिए मानव को वेदरूप भगवान् ने अनमोल उपहार दिया है। इन्हीं वेदों में से अथर्ववेद चिकित्सा सम्बन्धी क्षेत्र में अनुपम ज्ञान संजोए हुए हैं। विभिन्न व्याधियों का अनेक प्रकार से निदान करने के लिए अनेक प्रकार की प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली का अथर्ववेद में विस्तृत वर्णन किया गया है। प्राकृतिक-चिकित्सा के अन्तर्गत सूर्यचिकित्सा, अग्नि-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा, मन्त्र-चिकित्सा, हस्तस्पर्श-चिकित्सा, यज्ञ-चिकित्सा आदि आती हैं। परन्तु अधिक विस्तार की दृष्टि से इस शोध-पत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक चिकित्साओं का ही वर्णन किया गया है यथा सूर्य-चिकित्सा, जल-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा, अग्नि-चिकित्सा एवं यज्ञ-चिकित्सा।

सूर्य-चिकित्सा के अन्तर्गत उदित होते हुए सूर्य की किरणों के माध्यम से शिरोरोग, ज्वर, जलोदर, यक्ष्मा आदि रोगों का निदान कहा गया है। जल-चिकित्सा को अमृत तुल्य बताया गया है तथा इसे दिव्य औषधि माना है। इसी प्रकार वायु, अग्नि और यज्ञ भी चिकित्सा की दृष्टि

[1] **शोधच्छात्रा, संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र**

से मानव जीवन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन प्राकृतिक चिकित्साओं का उपयोग करके प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में उत्तम स्वास्थ्य रूपी इच्छा की पूर्ति कर सकता है।

प्रत्येक मनुष्य की इच्छा स्वस्थ जीवन की है। यदि उत्तम स्वास्थ्य होगा तभी मनुष्य सांसारिक कार्यों को करने में समर्थ हो सकता है। प्राचीन भारतीय ऋषियों ने मनुष्य के उत्तम स्वास्थ्य के लिए उचित आचार, आहार आदि का वर्णन किया है। मानव जीवन का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जिसके विषय में वेदों में वर्णन न किया गया हो। जहां वेदत्रयी को पारलौकिक फल प्रदान करने वाला कहा गया है, वहीं अथर्ववेद के विषय में आचार्य सायण ने कहा है कि यह वेद लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के फलों को प्रदान करने वाला है।[२] अथर्ववेद का आयुर्वेद से साक्षात् सम्बन्ध है। इसमें अनेक प्रकार के रोगों के निदान व चिकित्सा-प्रणाली का वर्णन किया गया है। आधुनिक समय में मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए अथर्ववेद में प्रचलित चिकित्सा प्रणाली की उपादेयता बहुत अधिक बढ़ गई है। जिनमें प्राकृतिक-चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह मानव जीवन के लिए वरदान स्वरूप है। इसके सभी तत्त्व जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि किसी-न-किसी रूप में प्राणिमात्र के जीवन के लिए परमोपयोगी हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा के अन्तर्गत कई प्रकार की चिकित्सा आती हैं- यथा जल-चिकित्सा, वायु-चिकित्सा, अग्नि-चिकित्सा, सूर्य-चिकित्सा, हस्तस्पर्श-चिकित्सा, यज्ञ-चिकित्सा आदि। इन सभी चिकित्साओं का सर्वप्रथम वर्णन ऋग्वेद में ही प्राप्त होता है तत्पश्चात् अथर्ववेद में इनका विस्तार से विवेचन मिलता है।

---

[२] व्याख्याय वेदत्रयम् आमुष्मिकफलप्रदम्।
एहिकामुष्मिकफलं चतुर्थ व्याचिकीर्षिति॥ अथर्ववेदभाष्यभूमिका, श्लोक१०

जिनमें से कुछ का वर्णन इस प्रकार है -

सूर्य-चिकित्सा:-

भारतीय संस्कृति में सूर्य का बहुत ऊँचा स्थान है। वेदों में सूर्य किरणों से चिकित्सा का वर्णन विस्तार में प्राप्त होता है। ऋग्वेद में सूर्य को सम्पूर्ण संसार की आत्मा कहा गया है।[३] प्रतिदिन उदित होता हुआ सूर्य प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्तव्य का निर्वहन करने की प्रेरणा देता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य मृत्यु के सभी कारणों को नष्ट करने वाला है।[४] साथ ही इसे शरीर को सुख प्रदान करने वाला भी कहा गया है।[५] सूर्य का प्रकाश प्रत्येक जीव के लिए अनिवार्य है। सूर्य के प्रकाश में रहना अमृत के लोक में रहने के समान माना गया है।[६] अथर्ववेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि उदित होता हुआ सूर्य सिर के सभी रोगों को, हृदय के सभी प्रकार के कष्टों को तथा सभी अङ्गों के दर्द आदि को नष्ट करता है।[७] इसी सूक्त में सूर्य किरणों को अनेक रोगों का नाशक कहा गया है यथा सिरदर्द, कानदर्द, बहरापन, अन्धापन, ज्वर, पीलिया, जलोदर, यक्ष्मा, वातरोग, पेट के रोग, फेफड़ों के रोग आदि।[८] अत: स्वस्थ रहने के लिए सूर्य किरणों का संस्पर्श अत्यावश्यक है। वेदों के अनुसार प्रायः सभी रोग सूर्यकिरण-चिकित्सा और विशेष रूप से उदित होते हुए सूर्य की किरणों से ठीक हो सकते हैं।

---

[३] सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। ऋग्वेद, १.११५.२

[४] उद्यन् सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान्। अथर्ववेद, १७.१.३०

[५] वही, ८.१.१५

[६] सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके। वही, ८.१.१

[७] सं ते शीर्ष्णः कपालानि, हृदयस्य च यो विधुः।
उद्यन् आदित्य रश्मिभिः शीर्ष्णो रोगम् अनीनशः॥ वही, ९.८.२२

[८] वही, ९.८.१-२२

जल-चिकित्सा:-

ऋग्वेद और अथर्ववेद में जल-चिकित्सा का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। जल के अधिष्ठाता होने के कारण रुद्र और वरुण देवों को जल-चिकित्सा के क्षेत्र में अग्रगण्य बताया गया है। इसलिए रुद्र को प्रथम जल-चिकित्सक कहा गया है।[९] इस चिकित्सा को 'जलभेषज' भी कहा जाता है। अथर्ववेदीय ऋषियों ने जल के अनेक गुणों का उल्लेख किया है। तदनुसार जल आनुवंशिक रोगों को नष्ट करने वाला है।[१०] जल हृदय के रोगों को दूर करने वाला[११], बलवर्धक[१२], सौंदर्यवर्धक[१३] एवं रोगनाशक[१४] है। जल को रोगनिवारक और पुष्टिवर्धक पदार्थों का जन्मदाता माना गया है। इसके द्वारा उत्पन्न अन्न आदि का सेवन कर मनुष्य शारीरिक और मानसिक पुष्टता को प्राप्त करता है। इसलिए इसे अमृत तुल्य कहा गया है।[१५] अथर्वा ऋषि ने इसे दिव्य औषधि माना है।[१६] जल चिकित्सा की कुछ उपयोगी विधियाँ हैं यथा-पात्र-स्थान (टब बाथ), कटि-स्थान, पाद-स्नान, अर्ध-स्थान, उषापान, जलपान आदि। इस प्रकार इस चिकित्सा से चर्मरोग, उदररोग, प्रमेह, ज्वर, ताप आदि अनेक प्रकार के रोगों को दूर किया जा सकता है। अत: जल ही जीवन है।

---

[९] रुद्रं जलाषभेषजम्। ऋग्वेद, १.४३.४

[१०] आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात्। अथर्ववेद, ३.७.५

[११] आपो ... हृद्द्योत् भेषजम्। वही, ६.२४.१

[१२] आपो हि ष्ठा मयो भुवस्ता न ऊर्जे दधातन। वही, १.५.१

[१३] वही, १.५.१

[१४] वही, १.६.१

[१५] अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। वही, १.४.४

[१६] आपो अग्रं दिव्या ओषधय:। वही, ८.७.३

वायु-चिकित्सा:-

मानव जीवन का आधार प्राण-वायु है। शरीर के विभिन्न अङ्गों में विचरण करने और विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पादित करने के आधार पर वायु के पाँच प्रकार प्रधान माने गए हैं- प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। शरीर में प्राण की दो शक्तियां विशेष रूप से कार्य करती हैं- प्राण और अपान। प्राणशक्ति श्वास के द्वारा वायु से ऑक्सीजन ग्रहण करती है और फेफड़ों में पहुंचकर समस्त कोशिकाओं को शुद्ध वायु के द्वारा पुष्ट करती है और निःश्वास के द्वारा फेफड़ों के दूषित तत्त्वों को बाहर निकालती है। अपानवायु का कार्य है-शरीर के अन्दर व्याप्त दूषित तत्त्वों को मल-मूत्र के रूप में बाहर निकालना और शरीर को शुद्ध रखना।[१७]

वेदों में प्राणशक्ति का बहुत अधिक महत्त्व वर्णित है अथर्ववेद में कहा गया है कि वर्तमान, भूत और भविष्य सब प्राण पर निर्भर है।[१८] प्राणों को संसार का स्वामी कहा गया है। यह चर-अचर सभी का स्वामी है।[१९] ऋग्वेद और अथर्ववेद में अनेक मन्त्रों में वायु को भेषज, विश्वभेषज, अमृत आदि कहा गया है। वायु को अमृत का निधि कहा गया है और इसे दीर्घायु का साधन माना है।[२०] अतः प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन प्राणायाम के माध्यम से शुद्ध वायु का सेवन कर स्वयं को निरोगी बनाना चाहिए।

अग्नि-चिकित्सा:-

अग्नि-चिकित्सा भी प्राकृतिक-चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है।

---

[१७] वेदों में आयुर्वेद, पृष्ठ.१४४

[१८] प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्। अथर्ववेद, ११.४.१५

[१९] प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणिति यच्च न। वही, ११.४.१०

[२०] अथर्ववेद, ११.४.९ / ऋग्वेद, १०.१८६.३

हमारे शरीर के भीतर ऊष्मा द्वारा भोजन को पचाकर शरीर की इन्द्रिय-शक्तियों को रसादि के रूप में भोजन पहुंचाना तथा सारे शरीर को गर्म रखकर उसे सर्दी अथवा रोगों से बचाना अग्नि का कार्य है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में अग्नि को चिकित्सक कहा गया है।[२१] अग्नि में रोग निवारण की प्रबल शक्ति होती है। शरीर में रोगों को उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं को यह नष्ट करता है। अथर्ववेद में अग्नि को भिषक् तथा भेषजकर्ता भी कहा गया है।[२२] अग्नि में गूगल को जलाने से रोग नष्ट होते हैं। गूगल की सुगन्ध रोग तथा रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने वाली होती है।[२३] विद्युत् का प्रयोग कर की जाने वाली चिकित्साएं भी अग्नि-चिकित्सा के अन्तर्गत आती हैं। अथर्ववेद के १९वें काण्ड में ही अग्नि को तेज, वर्चस्, ओजस्, दीर्घायु, बल और यश का कारण बताया गया है।[२४] यज्ञ की अग्नि वातावरण को शुद्ध कर सभी प्रकार के रोगाणुओं को नष्ट करती है। ऋग्वेद में कहा गया है कि अग्नि की ज्वालाएं मनुष्य को रोग रहित कर उनका कल्याण करती हैं।[२५] अतः अग्नि प्रत्येक जीव के लिए अनिवार्य ही नहीं है अपितु चिकित्सा के लिए भी महत्त्वपूर्ण साधन है।

यज्ञ-चिकित्सा:-

उत्तम स्वास्थ्य के लिए वैदिक यज्ञ एक महत्त्वपूर्ण साधन है। वेदों में यज्ञ के महत्त्व पर बहुत अधिक बल दिया गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि यज्ञ ही एक ऐसा साधन है, जिसके माध्यम से प्राकृतिक

---

[२१] अग्नि रक्षोहाऽमीवचातनः। अथर्ववेद, १.२८.१, ऋग्वेद, १.१२.७

[२२] अथर्ववेद, ५.२८.६

[२३] न तं यक्ष्मा अरुन्धते...। यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते। वही, १९.३८.१

[२४] इदं वर्चो अग्निना दत्तम्। आगन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्। वही, १९.३७.१

[२५] शमग्निरग्निभि: करत्। ऋग्वेद, ८.१८.९

सन्तुलन बनाया जा सकता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि जिस घर में नियमित रूप से यज्ञ किया जाता है वहां रोग कृमि स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं।[२६] यदि कोई मनुष्य विधिपूर्वक मन लगाकर यज्ञ करता है तो इससे गण्डमाला नामक रोग को भी दूर किया जा सकता है।[२७] ऋग्वेद और अथर्ववेद में यज्ञ-चिकित्सा के विषय में पूरा सूक्त प्राप्त होता है।[२८] जिसमें यज्ञ के माध्यम से रोगी को राजयक्ष्मा और अन्य अज्ञात रोगों से मुक्त करने के विषय में कहा गया है।[२९] यज्ञ में अनेक रोगनाशक ओषधियों का प्रयोग होने से यह वातावरण को शुद्ध एवं रोगनाशक बनाता है, जिससे प्राणिमात्र को स्वास्थ्य लाभ की प्राप्ति होती है। अतः यज्ञ-चिकित्सा एक स्वस्थ, सर्वथा दोष रहित चिकित्सा-प्रणाली मानी जा सकती है।

अतः उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि उस समय मनुष्य प्राकृतिक-चिकित्सा पर निर्भर था। अथर्ववेद में प्रचलित चिकित्सा प्रणालियों को आधार बनाकर आधुनिक समय में भी अनेक चिकित्सा पद्धतियां विकसित हुई हैं, जिनका आज बहुत अधिक प्रचार-प्रसार हो रहा है। प्रत्येक मनुष्य को ऊपर वर्णित प्राकृतिक चिकित्साओं का उपयोग करके विभिन्न व्याधियों को नष्ट कर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति करनी चाहिए, तभी मनुष्य निरोगी एवं सुखी जीवन प्राप्त कर सकता है।

---

[२६] तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे। अथर्ववेद, ७.७६.५

[२७] मनसा स्वाहा मनसा यदिदं जुहोमि। वही, ६.८३.४

[२८] वही, ३.११.१-८ / ऋग्वेद, १०.१६१.१-५

[२९] ऋग्वेद, १०.१६१.१

ओ३म्

राष्ट्रिया वैदिकशोधसङ्गोष्ठी

विषयः ऋग्वेदे विविधविद्याः

तिथिः- श्रावणशुक्लैकादशी, शुक्रवासरः, वि०सं० २०८१

तदनुसारं १६.०८.२०२४

वैदिकवाङ्मयस्य लब्धप्रतिष्ठविदुषां प्रथितयशसां पूज्यानां **स्वामिसमर्पणानन्दसरस्वतीमहाभागानाम्** (**पं. बुद्धदेवविद्यालङ्काराणाम्**) पावनजन्मदिनम् अभिलक्ष्य श्रावणमासस्य शुक्लपक्षस्य दशम्याम् एकादश्यां च तिथ्योः **स्वामिसमर्पणानन्दवैदिकशोधसंस्थानेन "ऋग्वेदे विविधविद्याः"** इति विषयमाधृत्य राष्ट्रिया वैदिकशोधसङ्गोष्ठी समायोज्यते। अस्यां वैदिकशोधसङ्गोष्ठ्यां तत्रभवन्तः सादरमामन्त्रिताः। भवदीया गरीमामयी उपस्थितिः नूनमेव शोधसङ्गोष्ठीमिमां समलङ्करिष्यति।

अध्यक्षाः

स्वामिविवेकानन्दसरस्वतीमहाभागाः

कुलाधिपतयः गुरुकुल-प्रभाताश्रमः

निदेशकः

प्रो० मानसिंहः

परामर्शकौ

प्रो० सोमदेवशतांशुः डा० वाचस्पतिमिश्रः

आयोजकः

स्वामि-समर्पणानन्द-वैदिक-शोध-संस्थानम्, गुरुकुल-प्रभाताश्रमः,

भोला-झालम्, टीकरी, मयराष्ट्रम् (उ०प्र०) २५०५०१

सम्पर्कसूत्रम्- ९३५४४८४०२०, ८२९९१९६३७३

प्रकाशक
स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला, मेरठ- २५०५०१
अणुवाक्: pavamani86@gmail.com